वेदान्त कसरी कार्यालय के लिये मुद्रक, प्रकाशक:
पण्डित रामस्वरूप,
केसरी प्रेस, बेलनगंज–आगरा।

प्रस्तावना ।

स्वस्वरूप का बोध ही परम शान्ति को प्राप्त कराने वाला है। अन्य का बोध अन्य के हेतु होता है अपना बोध अपने लिये होता है। सब कुछ जानते हुए अपने आत्म स्वरूप को न जाना उसने कुछ नहीं जाना। अपना स्वरूप ही सबका आद्य है सब ज्ञान का ज्ञान है, वहां ही सब ज्ञान की समाप्ति होती है उसे जानने से ही सब जानने का अन्त होता है जानने का शेष कुछ नहीं रहता यह ही वेदान्त रहस्य है आत्मा को जानने से सब कुछ जाना जाता है क्योंकि वह ज्ञान स्वरूप है।

वेदान्त द्वारा अपने आत्मा का बोध के निमित्त अनेक प्रकार की प्रक्रिया आचार्यों ने कथन की है। प्रक्रिया से बोध में तात्पर्य है प्रक्रिया में नहीं है, जिसको जो सुलभ प्रतीत हो वह ही उसके लिये श्रेष्ठ है। जैसे रसोई की अनेक वस्तुएं तृप्ति के हेतु हैं तृप्ति के पश्चात् उनकी कोई आवश्यकता नहीं है ऐसे बोध के बाद प्रक्रिया को समझना चाहिये। भेद में दुःख है और भेद भाव रहित ही दुःख से रहित होकर परमानन्द को प्राप्त होता है। वेदान्त रहस्य जो आत्म तत्त्व है उसको इस ग्रन्थ में दृष्टान्त द्वारा समझाया गया है।

—कर्ता ।

अनुक्रमणिका।

संख्या पृष्ठ

नित्योऽनित्यानांचेतनश्चेतनाना-
मेको बहूनां यो विदधाति कामान् ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥

यह सब अनित्य वस्तुओं में एक नित्य रूप है, वह सब चेतन वस्तुओं का एक चेतन रूप है, वह एक होकर बहुतों की कामनाएं पूर्ण करता है, जो विवेकी पुरुष बुद्धि में रहा हुआ उसे देखते हैं उनको शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है, अन्य को नहीं।

ॐ

वेदान्त रहस्य ।

आत्म स्तोत्र ।

जय आत्म अनाम अरूप अजं ।
जय अद्वय रूप अनूप निजम् ॥
अति सूक्ष्म अगम्य स्वयं सहजं ।
सुखसिंधु स्वबोध स्वरूप भजम् ॥१॥
शिव अच्युत देव अनादिचिरं ।
निरुपाधि अखंड अनंत वरम् ॥
अजरामर शाश्वत वेद शिरं ।
सम एक रसं सुख शांति करम् ॥२॥
मन बुद्धि गिरा गुण गो रहितं ।
सचराचर नायक सर्व गतम् ॥
अविकारि असंग स्पृहा गलितं ।
प्रभु मोक्षप्रदं परमं ललितम् ॥३॥
अखिलेश्वर कारक सृष्टि लयं ।
भव शोक हरं सुर संत प्रियम् ॥
जन रंजन भंजन ताप त्रयम् ।
भय नाशक देय परं अभयम् ॥४॥

नहिं वार न पार अपार परं ।
विधि विष्णु महेश गणेश धरम् ॥
सब सत्य असत्य चरं अचरं ।
अपरोक्ष परोक्ष प्रकाश करम् ॥५॥
सब का अपना सब का हित है ।
सब ही करता सब भोगत है ॥
सब जानत सर्व जनावत है ।
पर जानन में नहिं आवत है ॥६॥
कवि कोविद शेष जतावत हैं ।
सुर सिद्ध ऋषी समुझावत हैं ॥
श्रुति संत पुराण लखावत हैं ।
तट होय खड़े बतलावत हैं ॥७॥
शुचि शिष्य गुरु पद सेवत है ।
श्रुति वाक्य गुरु उपदेशत है ॥
जब त्वंपद तत्पद छानत हैं ।
तब शिष्य स्वयं पद जानत है ॥८॥
जिहि आत्म भजा सुख प्राप्त किया ।
जिहि आत्म तजा दुख मोल लिया ॥
जिहि आत्म भजा भव पार हुआ ।
जिहि आत्म तजा खर ख्वार हुआ ॥९॥
अस कौशल ! जानि सभी तजियें ।
तजि आत्म न अन्य कभी भजिये ।
निज राज्य अखंड तभी लहिये ।
पद निर्भय पाय सुखी रहिये ॥१०॥

हम संसार में क्यों आये हैं ?

संसार चक्र घटी यन्त्र के समान चल रहा है, यन्त्र में बांधे हुए घट जैसे एक ही आधार पर घूमते हैं इसी प्रकार सब जीव एक ही मार्ग का अवलम्बन करते हैं, आते हैं, जाते हैं, भरते हैं, खाली होते हैं, इस प्रकार की क्रिया सब के लिये अनिवार्य है। ऐसा होते हुए भी सब की इच्छायें भिन्न भिन्न प्रकार की हैं। जैसे मगर के बच्चे पैदा होते ही जल की तरफ जाने की इच्छा करते हैं तो भी सब का मार्ग एक नहीं होता, कोई उत्तर, कोई दक्षिण, कोई पूर्व और कोई पश्चिम के मार्ग से जाता है। हजारों अन्डों से निकले हुए बच्चों में से कोई एक ही जल तक पहुँचने पाता है, बाकी सब मार्ग में ही समाप्त हो जाते हैं इसी प्रकार संसार के मनुष्य–प्राणियों में देखने में आता है। अपने आद्य स्थान की तरफ जाने की सब की इच्छा है परन्तु निर्विघ्नता से वहां तक पहुँचने वाला कोई कहीं निकल आता है। संसार में संसारियों को प्रकाश दीखता है–सब समझते हैं कि हम अपना सब काम प्रकाश में करते हैं परन्तु वस्तुतः संसार प्रकाश वाला नहीं है, अन्धेरा-मय है क्योंकि घोर अन्धेरे में व्यवसाय में लगे हुए एक दूसरे से ठोकर खाते हैं, गिरते हैं, पड़ते हैं, लड़ते हैं, झगड़ते हैं और एक के दो दो तीन तीन टुकड़े हो जाते हैं, ऐसा

होना अन्धेरे सिवाय नहीं बनता। व्यवहारासक्ति में फँसे हुए मनुष्यों का यह ही हाल है, वे लोग अन्धेरे और प्रकाश का अर्थ नहीं समझते किन्तु उल्टा समझते हैं— प्रकाश को अंधेरा समझते हैं और अंधेरे को प्रकाश समझते हैं! प्रकाश में ठोकर खाना नहीं बनता, भूल नहीं होती तब प्रकाश में अन्धेरे के समान चलना कहां है? संसारी मनुष्य अंधेरे में हैं, जैसे अन्धा अन्धा होते हुए भी अपने को देखता समझता है वैसे ही सब संसारी हैं। अन्धेरे में ठोकर खाना स्वाभाविक है। संसार में भूल की तो कोई गिनती ही नहीं है। भूल तब होती है जब चित्त स्व विषय में नहीं रहता। भूल का होना मानसिक अथवा स्थूल अन्धेरे में ही होता है। जन्म से मरण पर्यन्त लाखों करोड़ों भूल करने वाले प्रकाश में हैं, ऐसा किस प्रकार समझा जाय? व्यवहार में आसक्ति वाले जितने संसारी मनुष्य हैं, वे सब आत्म तत्त्व में अन्धे हैं। ऐसे अन्धों की चलने आदिक सब क्रियाओं में भूल होती है, ठोकरें लगती हैं, जिस गड्ढे में अन्धा हो एक बार गिर जाता है उसमें बारंबार गिरता है, स्वयं गिरता है और दूसरों को भी इस प्रकार गिरता हुआ देखता है, जब कभी उसे गिरने से दुःख होता है तब इस प्रकार के गड्ढे में न गिरने का निश्चय कर लेता है परन्तु प्रसंग आते ही निश्चय एक तरफ रक्खा रह जाता है, धड़ाम से फिर गिर पड़ता है,

इसी का नाम अन्धत्व है। ऐसे अन्धों से नेत्र हीन अन्धा तो कुछ अच्छा है क्योंकि वह जिस गड्ढे में एक वार गिरता है, उसमें विशेष करके फिर से नहीं गिरता। आसक्ति वाला अन्धा तो वारंवार गिरता है इसलिये वह आंतर अन्ध है, अन्धे की तो बाहर की आंखें ही फूटी हैं आसक्ति वाले की तो वाहर और हिये की दोनों ही फूटी हैं। वाहर के अन्धेपने से भीतर का अन्धापना विशेष दुःख दायक है! जिसको देखो उसका ध्येय भिन्न भिन्न है यह ध्येय भूल का होता है। जो वास्तविक ध्येय नहीं है उसे ध्येय मान कर दौड़ते हैं, गिरते हैं, दुःख पाते हैं परन्तु ध्येय को नहीं छोड़ते! चेतते नहीं, यह ही संसार की विचित्रता है। ऐसों को किस प्रकार मनुष्य कहा जाय? उनमें मनुष्य के कौन से लक्षण हैं? न उनको अपनी खबर है, न दूसरों की खबर है! काम, क्रोध, मोह आदि करके नाचने वाले केवल मिट्टी के पुतले हैं, उनमें से उनका वास्तविकपना उड़ गया है और उसके स्थान में काम क्रोधादिक का राज्य प्रवृत्त हो रहा है। वे उसे कुतर कुतर कर खाते हैं और मूर्ख अपने को कुतरवा कर खिलाने में प्रसन्न होता है। सब संसार आत्म स्वरूप के ज्ञान से रहित मूर्खों का भण्डार है! मूर्ख मूर्ख से लड़ते हैं, मूर्ख मूर्ख के संग से प्रसन्न होते हैं! हाय! ईश्वर! तूने अपनी सृष्टि में इतने मूर्खों को क्यों भर रक्खा है? क्या

सज्जनों को अपनी सृष्टि में भरने से तुझे अपने ईश्वरत्व चले जाने का भय है ? हाय ! संसार ! हाय माया ! हाय रे युग धर्म ! यह तुम्हारा धांधल ही क्या है ?

एक मुसाफिर मार्ग में जा रहा था, उस रस्ते से जाने वाले एक मनुष्य ने उससे कहा "तू कहां जाता है ?" मुसाफिर ने कहा "पूर्णनगर में जाना चाहता हूं !" मनुष्य ने कहा "तूने बड़ी भूल की है ! दूसरे मार्ग से चला जाता तो ठीक होता ! अब तो तुझे माया नगर में होकर जाना पड़ेगा ! खैर ! मैं जो कहता हूं उसे ध्यान में रखियो, माया नगर की हवा बहुत विलक्षण है ! एक प्रकार का नशा पैदा करती है, सद् बुद्धि को भ्रष्ट कर देती है, तू बाहर के रस्ते से निकल जाइयो, उसकी हवा से बचता रहियो, यदि उसकी हवा लग गई तो वह तुझे अपने में मिला लेगी, तू आगे जाने न पावेगा !" ऐसा कहकर वह मनुष्य अपने मार्ग चला गया। उस मनुष्य के कहने से मुसाफिर को चटपटी लगी, अपने जी में विचारने लगा "उस परोपकारी पुरुष ने मुझे अनजान जानकर ठीक ही कहा है, मुझे माया नगर की हवा से बचना चाहिये, हवा वस्त्र में लग जाती है—चिपट जाती है !" ऐसा विचार कर मुसाफिर ने अपने सब वस्त्र उतार कर उनकी गठरी बांध ली और उसे शिर पर रखकर अपने मन में निश्चित होकर

नंगा धड़ंगा चलने लगा। सामने से कई मनुष्य आ रहे थे, उनमें से एक बोला "कैसा मूर्ख बेशर्म है! कपड़े होते हुए भी गठरी बांध कर शिर पर रख कर नंगा चला आता है!" दूसरा कहने लगा "पूरा स्वांग बनाया है!" तीसरे ने कहा "मूर्ख कपड़े क्यों नहीं पहिनता?" मुसाफिर बोला "तुम लोग माया नगरी के दीखते हो! माया की हवा से तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हुई है! तुम नहीं समझ सकते कि मैंने यह किसलिये किया है! तुम अपने मार्ग चले जाओ!" चौथा बोला "पिशाच है! पिशाच!" पांचवे ने कहा "मारो पत्थर!" छःठा पत्थर उठा कर मारने को तैयार हुआ! उसे देखकर मुसाफिर घबराया! लगा भागने! भागता जाता था और विचार करता जाता था "उस सज्जन ने सच ही कहा था! माया नगरी की हवा की विचित्रता आज ही मेरे देखने में आई है! अभी माया नगरी तो दूर है! उन दुष्टों से कैसे पीछा छूटे?" छःओं मनुष्य मुसाफिर की तरफ दौड़े, एक मुसाफिर को पकड़ना चाहता था, इतने ही में मुसाफिर जमीन पर गिर गया और पत्थर से उसका शिर फूट गया, ऐसा देखकर छःओं मनुष्य भाग गये। थोड़ी देर में मुसाफिर सावधान होकर चलने लगा। जी में कहता जाता था "माया नगरी! मैंने तेरी हवा लगने नहीं दी है! मजबूत गठरी में तू घुस नहीं सकती!" इतने में सामने से आते हुए दो मनुष्य दिखाई

दिये ! जब वे पास आये तब इनकी दृष्टि मुसाफिर पर पड़ी । मुसाफिर घबरा रहा था । उन मनुष्यों में से एक ने हुर्रे की पुकार की, दूसरे ने धूल उड़ाई । मुसाफिर को पागल समझ कर वे चल दिये । इसी प्रकार मुसाफिर को जो जो मिलते जाते थे वे उससे छेड़खानी करते जाते थे। मुसाफिर किसी को गालियां देता, कभी किसी के पत्थर मारता था, कभी गिर पड़ता था और कभी किसी का पत्थर, कभी किसी की लाठी खानी पड़ती थी, इस प्रकार माया नगर के चक्र से वह बाहर निकल न सका, दुर्बल हो गया था, स्वभाव बिगड़ गया था, इधर से उधर और उधर से इधर घूमता था । वह अपने दिल में समझता था कि मैंने माया नगर की हवा लगने नहीं दी है, मैं माया की हद से बाहर निकल रहा हूँ । कैसा आश्चर्य ! उसे तो माया नगर की बात सुनते ही हवा लग गई थी । उस हवा का यह ही प्रताप था कि वस्त्रों की गठरी बांध कर शिर पर रख कर नंगा होकर चलता था ! हाय ! अज्ञान ! माया की हवा लग गई थी, तब भी स्वीकार नहीं करता था ! वह अभी तक माया नगर में ही विचर रहा है ! इसी प्रकार सब संसारी मनुष्य माया के अन्धेरे में घूम रहे हैं ! न होती हुई माया को अपने में स्थान देकर आप ही व्याकुल होते हैं, फिर भी अपने को निर्दोष समझते हैं ! 'हम शुभ कार्य करते हैं ! हमारा हित हो रहा है ! सुख भोग रहे हैं !'

ऐसा मानते हैं, यह संसार चक्र है! यह माया की लीला है! सब संसारियों को माया नगर की हवा लगी हुई है, होश हवास ठिकाने नहीं है, तब सत्य विचार कहां से हो?

एक कुलीन ब्राह्मण पूर्व के शुभ संस्कारों के योग से संसार में आकर भी संसार से विरक्त था, छोटेपन से ही संसार का कोई पदार्थ उसे अच्छा नहीं लगता था। संसारी मनुष्यों के समागम से दूर रहता था, घर में माता पिता और भाई बहिन के साथ विशेष बोलता न था। उसे एकांत ही पसंद पड़ता था। रात्रि दिन उसका यह विचार हुआ करता था "मुझको क्या करना चाहिये?" जगत् में देखता था तो कोई खाने पीने का शौक़ीन, कोई पहिनने ओढ़ने का प्रेमी, कोई देखने की, कोई सुनने की इच्छा वाला, कोई स्त्री बाल बच्चों को ही मुख्य मानने वाला, कोई माता पिता को चाहने वाला, कोई धन की तीव्र इच्छा वाला ऐसे अनेक प्रकार के मनुष्य दीखते थे। इनमें से कोई भी पदार्थ उसके मन को खींच नहीं सकता था। वह जगत् के व्यवहार में मूढ़ सा दीखता था। माता पिता ने पढ़ाने लिखाने का प्रबन्ध किया परन्तु चित्त बिना वह कुछ विशेष पढ़ न सका, जब शादी होने का समय आया तब वह घर से भाग कर जंगल में चला गया। पश्चात् उसने माता पिता और घर की कुछ खबर न ली;

जंगल में ही रहता, वहां के फल फूल और पत्तों से अपना गुजारा करता था। मनुष्यों की दृष्टि में बहुत कम आता था। इस प्रकार बहुत दिनों तक एकांत में रहा, परंतु अपना कोई निश्चय स्थिर न कर सका, उसको यह 'चिन्ता' हमेशा सताया करती थी कि मैं संसार में क्यों आया हूँ, मुझे क्या करना चाहिये? यदि मैं जंगल में रहने के निमित्त ही जन्मा होता तो मनुष्य क्यों होता? यह कार्य तो पशु होने से भी चल सकता था। ऐसे अनेक प्रकार से वह अपना समाधान करना चाहता था परन्तु किसी ध्येय का निश्चय नहीं कर सकता था, वारंवार उसे यह विचार भी होता था कि सब मनुष्य किसी एक में विशेष भाव करके संसार में प्रवृत्त हो रहे हैं ऐसा एक भाव मुझे क्यों नहीं होता? क्या वे भी मेरे समान भीतर से चिंता वाले हैं? नहीं! ऐसा तो नहीं दीखता! वे लोग प्रसन्न दीखते हैं, मैं चिंताग्रस्त—उदास दीखता हूं। जंगल में रहना अच्छा नहीं है, किसी सज्जन के पास जाना चाहिये, उससे अपना हाल कहना चाहिये, संभव है उसके पास मेरी चिंता रूप व्याधि की औषधि हो! ऐसा विचार कर वह शहर में आया, चाहे जहां पड़ा रहता, किसी से कुछ न बोलता, जो कुछ कोई दे देता, खा लेता, किसी से बोलना चाहता था परन्तु बोल नहीं सकता था। 'किसी से बोलूं तो क्या बोलूं? ठीक उत्तर मिले या न मिले!' इस शंका से किसी

से कुछ न बोलता। लोग उसे चुप चाप, आशा तृष्णा रहित परमहंस अवस्था में देखकर अच्छे अच्छे पदार्थ खाने को लाकर देते थे। दिन भर उसके पास बैठे रहते थे। ऐसा देखकर वह घबराया और वहां से दूसरे स्थान पर भाग गया। वह अपनी पीड़ा से मर रहा था। जगत् की अंधी आंखों से सिद्ध दीखता था? एक शहर से दूसरे शहर में घूमा परन्तु उससे बोला न गया। एक बार घूमता हुआ गंगा किनारे पहुंचा। वहां उसने देखा कि एक संत से सब लोग 'ॐ नमो नारायण' कहते थे। उसने भी इस प्रकार 'ॐ नमो नारायण' कह कर दंडवत् किया। संत की प्रसन्न मुद्रा देखकर वहां बैठ गया और बैठा ही रहा! सब लोगों के चले जाने के बाद संत ने कहा "तेरी क्या इच्छा है?" ब्राह्मण की वाचा खुली, और कहा "महाराज! मेरी एक प्रार्थना है मैं मूढ़ हूं, मैं संसार में क्यों आया हूं?" संत ने कहा "तेरी बात तो तू जाने! हां! मेरी पूछे तो मैं परम पद प्राप्त करने आया हूं? मैंने प्राप्त भी कर लिया है और उस कार्य में प्रवृत्त हूं!" ब्राह्मण बोला "भजन किसको कहते हैं और परम पद क्या है?" यह पुरुष शुद्ध है, इसकी बुद्धि मोटी है, जल्दी समझ नहीं सकता, यह देखकर संत ने कहा "तेरा योग्य उत्तर तुझको मिलेगा, कुछ दिन तक तुझे मेरे साथ रहना पड़ेगा, छोटपन से अब

तकका सब वृत्तांत कह, जिससे तेरी इच्छा, योग्यता मालूम हो जाय!" ब्राह्मण ने अपना सब वृत्तांत सुनाया। संत को निश्चय हो गया कि यह संस्कारी पुरुष है, सहज परदा है, परदा हट जाय तो अवश्य ज्ञानी हो जायगा। उसे संसार की खबर नहीं है, प्रथम शहर में घुमाना चाहिये। ऐसा निश्चय कर के संत बोले "मैं तुझे उजले वस्त्र देता हूं, उनको पहिन ले, जहां दो चार अच्छे मनुष्य बैठकर बात चीत करते हों, वहां जाकर उनकी बात सुनियो और जो जो सुने मुझसे कहियो, जिन बातों में तुझे शंका हो, उन का उन लोगों से प्रश्न कीजियो, तेरे भोजन का प्रबंध मेरे पास होगा।" इस प्रकार संत ने उसे शहरमें अनेक मनुष्यों के पास घुमाया, उसे बोलने की और प्रश्न करने की छुट्टी थी, उसका स्वभाव सतेज हुआ देखकर एक दिन संतने कहा "अब तू शहरमें मनुष्योंके समुदाय में जाय तो तेरा जो कुछ प्रश्न है उसको पूछियो और जो जो उत्तर मिलें मुझसे आकर कहियो।" ब्राह्मणने उस दिन ऐसा ही किया। कई मनुष्य एक बगीचेमें सैर करने गये हुए थे, सब अच्छे २ कपड़े पहिने हुए थे, सब बराबरके मिलकर आपस में मजाक और अनेक प्रकार की बात चीत कर रहे थे। ब्राह्मण वहां पहुंचा। उनमें कुछ बात चीत होने के बाद ईश्वर सम्बंधी बातें होने लगीं। तब ब्राह्मण बोला "तुम सब सज्जन दीखते हो, आप लोग यदि जानते हो तो मेरी एक शंका का समाधान कर दो।"

एक ने कहा क्या शंका है ? ब्राह्मण बोला मैं इतना बड़ा हुआ, बहुत स्थानों पर घूमा परन्तु अभी तक मुझे यह मालूम नहीं है कि इस संसार में मैं क्यों आया हूं, किस कार्य के लिये आया हूं ? उस मंडली में एक मजाक खोर बैठा था, कहने लगा वाह ! वाह ! महाशय, खूब शंका निकाली । क्या आपको खबर नहीं है ? आप संसार में झक मारने को आये हैं ! दूसरा मनुष्य उसे रोक कर कहने लगा भाई ! तेरी मजाक जाती ही नहीं ! विचारा सीधी बात पूछता है, तू उल्टा उत्तर देता है; मैं तुझसे पूछता हूं कि तू संसार में क्यों आया है ? क्या सीधे मनुष्य से मजाक करने को ? तीसरा जो जिन्दगी भर का दुःखी ही था, बोल उठा "यदि मुझसे पूछो तो मेरा जन्म तो दुःख भोगने के लिये ही हुआ है !" एक और बोला "नहीं ! नहीं ! ऐसा नहीं है ! मनुष्य संसार में दुःख भोगने को नहीं आता, खाने पीने, मौज उड़ाने को आता है ! ईश्वर ने सृष्टि में कैसे कैसे उत्तम पदार्थ बनाये हैं, मनुष्य उनको भोगता है, मैं तो अपने जन्म का फल इसी में सार्थक मानता हूं, तुम देखते हो मैं तो हमेशा मौज शौक में ही रहता हूं, आलसी मनुष्यों को इस प्रकार की मौज प्राप्त न हो तो इसमें उन्हीं का दोष है !" मजाक खोर बोला "तुम कोई ठीक नहीं कहते, हम संसार में क्यों आये हैं ? इसका उत्तर सुनो, हम सब मरने को आये हैं; कोई इस

बात की ना नहीं कर सकता, सब मरते ही हैं, श्रीमान् हो या गरीब हो; जो जन्मा है, मरेगा अवश्य! क्यों खुशालचंद! ठीक है न? तुम्हारी मौज, शौक, खुशाली तभी मालूम होगी जब कंठ में प्राण आ जायगा!" खुशालचन्द बोला "अरे! बेवकूफ! सीधी बात में तेरी मजाक!" लोभीदास बात काट कर बोल उठा "जो कोई जन्मता है, धन कमाने के लिये ही जन्मता है, धन में ही सब प्रकार का ऐश्वर्य है! धन से प्रतिष्ठा है! इसलिये भज कलदारं, भज कलदारं, मूढ़ मते! देख देखकर तृप्ति हो जावे, भज कलदारं!" कर्मचन्द बोला "लोभीदास! तुझे धन ही सूझता है! जिसने धन दिया है उसका भजन अवश्य करना चाहिये! भजन ही जन्म लेने का सार्थक है! क्या धन को तू छाती पर बांध कर ले जायगा?" यह सुनकर कुटुम्बदास बोला "नहीं! संसार भोगना, स्त्री बाल बच्चों के संग रहना ही स्वर्ग सुख है! इसके सिवाय अन्य स्वर्ग कोई नहीं है! यह स्वर्ग सुख लेने के लिये ही हम जन्मे हैं! स्त्री का हाव भाव, बच्चों की तोतरी वाणी स्वर्ग सुख से भी कहीं विशेष सुख वाली है!" सुधारक बोला "क्या बक रहे हो? बाल बच्चों में तो पक्षी पशु भी रहते ही हैं व्यवहार सुधारने, देश का सुधार करने के लिये ही हमारा जन्म हुआ है!" विद्यादास बोला "देश सुधार, जाति सुधार तब होता है जब प्रथम अपनी उन्नति करली जाय, आप तो

सुधरे नहीं, काला अक्षर भैंस बराबर। चले दूसरों को सुधारने। वाह, भाई वाह! कहीं सोता हुआ सोते हुए को जगा सकता है?" मजाक खोर बोला "तब यों क्यों नहीं कहते, लड़के पैदा करने के लिये ही मनुष्य जन्म है शास्त्र में तुमने सुना होगा कि जब मनुष्य जन्मता है तब तीन कर्जे लेकर आता है, पुत्र पैदा करना रूप पितृ ऋण भी एक कर्जा है।" स्वर्गदास बोला "यह ठीक है परन्तु इतना ही नहीं, उस कर्जे को चुकाता हुआ स्वर्ग जाने के लिये शास्त्र की आज्ञानुसार यज्ञादिक भी करने चाहिये, इसीलिये संसार में जन्मते हैं।" पितृ भक्त बोला "माता पिता का उद्धार करने के लिये जगत् में जन्म धारण किया है।" मोक्षचंद बोला "माता पिता का उद्धार तुम्हारे कर्म से क्या होगा? उनकी क्रियां करके सब अपना ही उद्धार करते हैं! श्राद्धादिक करके उन्हें कुछ मदद पहुँचा सकते हैं परंतु उद्धार नहीं कर सकते, तुम्हारी सब की बात मैंने सुनी, अब तुम मेरा निश्चय सुनोः—सब आये तो परम पद प्राप्त करने हैं, परंतु होता है यह कि पाप पद प्राप्त होता है, कोई मुमुक्षु होकर संसार से निकलने का प्रयत्न करता है!" मजाक खोर बोला "तब ऐसे ही कहो कि मनुष्य केवल जननी को नव मास तक भार उठवाने के लिये ही जन्मता है! बोलो श्रीमौज मजे की जय!" सब उठ कर चल दिये। ब्राह्मण भी उठ कर संत महाराज के पास पहुँचा और

जो जो उसने सुना था अक्षरसः कह सुनाया। तब संत बोले "तेरे एक प्रश्न के कई उत्तर मिल चुके हैं, अब विचार कि उनमें से कौन सा उत्तर यथार्थ जचता है। उनमें कई उत्तर झूठे हैं कई अर्ध सच्चे और कई सच्चे भी हैं।" ब्राह्मण बोला "मेरी समझ में कुछ नहीं आता, उनमें से एक उत्तर भी सच्चा नहीं लगता। परम पद कुछ ठीक जचता है परंतु उसे मैं जानता नहीं तब किस प्रकार प्राप्त किया जाय? उन लोगों के दिये हुए उत्तरों की यथार्थता और अयथार्थता विचार पूर्वक समझाइये और उनका प्रयत्न भी बताइये। आपके पास इतने दिन रहनें से आपके ऊपर मेरी श्रद्धा दृढ हो गई है, आपके वचनों से अवश्य मेरा हित होगा। संत बोले:—सुन, प्रथम उत्तर मसखरे ने दिया था, वह मजाक रूप होतें हुए भी ठीक इस प्रकार था कि जगत में मनुष्य जिस कार्य के लिये आते हैं, वह कार्य उनसे नहीं होता तब उन का जन्म झक मारने के लिये हुआ है, यह कहना ठीक ही है परन्तु यह उत्तर पापी, अधर्मी, नीच मनुष्यों का है इसलिये ठीक नहीं है। अन्य मनुष्य मसखरे का जन्म मजाक करने के निमित्त मानते हैं, वह ऊपर के कर्म से है इसलिये वास्तविक नहीं है, यदि कोई यह कहे कि मनुष्य ईश्वर की मजाक करने के लिये ही जन्मते हैं तो यह ठीक है क्योंकि मनुष्य कहते हैं कि हम ईश्वर को मानते हैं, ईश्वर सर्व व्यापक है परन्तु अधर्म करनेमें ईश्वर से नहीं डरते,

उनका ऐसा करना ईश्वर के साथ मजाक ही हुआ और क्या ? इसलिये संसार में आने का ठीक हेतु न समझना पापाचरण है। दूसरे ने कहा था कि मैं तो संसार में दुःख भोगने को आया हूं, उस विचारेको दुःखके सिवाय जिसको लोग विशेष सुख कहते हैं उसका अनुभव ही नहीं हुआ इसलिये उसने आप बीती बात कही थी। उसका कथन ठीक नहीं है क्योंकि यदि दुःख भोगने के लिये ही जन्म होवे तो नरक के कीट होने से ही दुःख का भोग हो सकता है, मनुष्य होने की क्या आवश्यकता है ! यह संसार कर्म भूमि है, पूर्व का भोग भोगते हुए आगे का भोग अथवा परम पद प्राप्त करनेकी योग्यता होती है, केवल दुःख भोग के निमित्त संसार नहीं है। खुशालचन्द का उत्तर भी ठीक न था, वह कुछ धन वाला था, मौज मजा करना ही उसने अपना कर्तव्य समझ रक्खा था, बहुत से राक्षस ऐसे हुए हैं जो भोगों में अतृप्त रहकर नरक गामी हुए हैं। इसलिये यह उत्तर भी ठीक नहीं है, फिर मजाक खोर ने कहा था कि हम सब मरने को आये हैं, यह ठीक है परन्तु मरना अनिवार्य है, कर्तव्य नहीं। प्रश्न तो यह है कि हम कौनसा कार्य करने को आये हैं ? लोभीदास ने कहा था कि धन कमाने को ही आये हैं, धन कोई वस्तु नहीं है, धातु पाषाण है, न खाने में

आता है, न पीने में, केवल बदला रूप है, धन का संचय तो धातु की खानें बहुत सी हैं परन्तु उनसे शांति नहीं होती। अति धन का प्राप्त करना, उसमें ही रुचि का होना गधे के समान बोझा ढोना है, उसके लिये जन्म नहीं है, धन बदले के लिये होने से बदले के लिये ही उपयोगी है, संचय करने को नहीं है, तब जन्म का सार्थक रूप कैसे हो ? धन अन्न से भी तुच्छ है, यदि अन्न न हो— न मिल सके तो मनुष्य जी नहीं सकता, कर्मदास ने शुभ कर्म करने को मनुष्य जन्म बताया था, यह कुछ ठीक है परन्तु कर्म से ईश्वर की प्रसन्नता नहीं होती। जब कर्म शुद्ध भाव सहित होता है तब परमपद की प्राप्ति में मदद रूप होता है, यदि कोई कर्म से ही अपना पूर्ण श्रेय करना चाहे तो नहीं हो सकता, कर्मोष्ठि को ईश्वर की तरफ कुछ भाव अवश्य है परन्तु जगत् की आसक्ति को दृढ़ता से छोड़ते हुए नहीं है। कर्म करने से मनुष्य उच्च गति को प्राप्त होता है, कर्म मनुष्य का गौण कर्तव्य है, मुख्य नहीं है क्योंकि ज्ञान के सिवाय अन्य किसी प्रकार से मोक्ष नहीं होता, यह बात शास्त्र पुकार पुकार कर कह रहे हैं, कुटुम्ब-दास का विचार नीच है, जगत् में विशेष २ फसाने वाला है, जिसमें वह प्रेम मानता है ऐसा स्त्री पुत्रादिक कुटुम्ब अप्रत्यक्ष रूप से उसका शत्रु है। ऐसे कुटुम्बी तो जीव मात्र के होते हैं; मनुष्य होकर कुटुम्ब में डूब

जाना मूर्खता है। अनेक कुटुम्ब हुए और गये। सबके साथ प्रेम करते करते पश्चात्ताप और दुःख ही होता रहा है, सुधारक का कहना भी अयुक्त है जैसे कि उसका उत्तर दूसरे ने दिया है। 'पागल आप सुसराल में न जाय और सहली को सुसराल जाने की शिक्षा दे' इसीके समान उसका कथन है। "मेरा तो जो है सो है ही, मैं सुधर नहीं सकता परन्तु दूसरों को सुधार ही दूंगा' वाहरी ! मूर्खता ! हम तो सर्व गुण संपन्न हैं, खामी है तो अन्य में ही है। ऐसा न तो अपनी सुधार कर सकते हैं, न दूसरों का। मसखरे ने लड़के पैदा करने के लिये मनुष्य जन्म बताया, सो लोगों की प्रवृत्ति देखकर बताया था, यहां कर्जा चुकाने का प्रश्न नहीं है, प्राप्त करने का प्रश्न है। स्वर्गदास ने उन शास्त्रोक्त कर्म करने को कहा था जिनसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है। यह भी सम्पूर्ण ठीक नहीं है, मनुष्यत्व से कुछ उच्चता में ले जाने वाला अवश्य है, परन्तु मनुष्य उससे भी कुछ अधिक कर सकता है। स्वर्ग में ऐश्वर्य की प्राप्ति दुःख रहित नहीं है, यह मनुष्य का गौण कर्तव्य है, मुख्य नहीं है, पितृ भक्त का कहना व्यवहार में ठीक है, परमपद के निमित्त नहीं है, महा पितृ जो परमात्मा है उसीका भक्त होना चाहिये। मोक्षचन्द का कहना ही युक्त है, मनुष्य जन्म परमपद प्राप्त करने के लिये है। मसखरे का अन्त का कहना अर्थ सूचक है, जब जगत् में आकर

न तो जगत् का हित हो, न स्वर्ग प्राप्ति हो, न परमपद हो तब जन्म का धारण करना माता को व्यर्थ बोझे मारना ही है।

मोक्षचन्द मुमुक्षु का कहना ही ठीक था, तू शुभ संस्कारी है, मुमुक्षु है परन्तु आज तक तुझको सदुपदेश और सत् संग नहीं मिला इसलिये बावला होकर भटकता है। अब मैं पूछता हूँ कि इन उत्तरों में तुझे कौनसा उत्तर ठीक लगता है?" ब्राह्मण बोला "महाराज! मुमुक्षु का कहना ही ठीक लगता है परन्तु वह किस प्रकार हो सके? वहां आगे बुद्धि चलाती नहीं आपकी कृपा से ही कुछ हो जाय तो भले होजाय. इस विषय में मेरी बुद्धि कुंठित होती है। मैंने शास्त्र नहीं देखे, यदि शास्त्र देखे होते तो भी क्या? शास्त्रों में एक दूसरे से विरुद्धता है, मैं एक का पूर्ण निश्चय भी नहीं कर सकता। अब तो आपके ऊपर श्रद्धा है।"

सन्त बोले—"मैं तुझे समझाता हूँ; जिस प्रकार मैं समझाऊं उस प्रकार समझ कर अपने स्वरूप को जान ले। जीव अनादि काल से अविद्या में बन्धा हुआ है, उसे अपनी खबर नहीं है, भोगों में लुब्ध होने से उसके जन्म जन्मान्तर हुआ करते हैं। जब वह अपने सच्चे, आद्य, निर्मल, अव्यय, व्यापक स्वरूप को जान जाता है तब सब

प्रकार की आपत्तियों से छुट कर अविचल परम शांति को प्राप्त होता है। ऐसा होने के योग्य केवल मनुष्य जन्म ही है। प्रथम तो सब संसार और संसार के पदार्थों को देख, वे सब उत्पत्ति नाश वाले और विकारी हैं। जब उनके साथ सम्बन्ध बांधते हैं तब नाश और विकार होने में दुःख भोगना पड़ता है इसलिये जगत् के पांचों विषय और सब पदार्थ दुःख रूप हैं, एक ब्रह्म ही सुख स्वरूप है। ब्रह्म की तरफ भाव करके जगत् में वैराग्य करना चाहिये। इस प्रकार अधिकारी के साधन युक्त होकर मुमुक्षु होते हैं। जिसे अपने परम हित करने की आकांक्षा हो उसे मुमुक्षु अवश्य होना चाहिये। उसके बाद श्रवण के लिये सद्गुरु के पास जाना चाहिये। यहां तक तो तू आ पहुँचा है। अब मैं संक्षेप से तुझे श्रवण कराता हूँ:—तू अनादि, अनंत, सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वरूप है परन्तु शरीर के अभिमान से—देहाध्यास से 'मैं देह हूँ' ऐसा तू मानता है। यह तेरी भूल—अज्ञान है। तू देह नहीं है! देह तुझसे पृथक् है। देह तेरी उपाधि रूप एक वस्त्र है। तूं सर्व व्यापक है। देह के भाव से अपने को शरीर में मानता है। इस भाव को छोड़। जैसे तू एक शरीर को 'मैं' समझता है इसी प्रकार सब शरीरों का एक शरीर रूप ईश्वर को समझता है इसलिये ईश्वर बड़ा और तू छोटा बना है। तूने अपनी उपाधि के समान ईश्वर में भी महान् उपाधि का भाव कर रक्खा है! अब तू

दोनों की उपाधियों को हटा कर देख। जो तत्त्व तू है, वह ही तत्त्व ईश्वर है। वस्तुतः दोनों में रहा हुआ उपाधि रहित तत्त्व ब्रह्म है, वह ही तू है। इसको श्रवण कराने के लिये वेद का महा वाक्य 'तत्त्वमसि' (वह तू है) है यानी जो ईश्वर का शुद्ध तत्त्व है, वह ही शुद्ध तत्त्व तू है। तुझमें दुःख नहीं, सुख नहीं, जन्म नहीं, मरण नहीं, उपाधि नहीं, वस्तुतः तू उपाधि वाला नहीं, इस स्वरूप को तू अपना स्वरूप समझ ! इसे समझने के लिये–निश्चय में डटने के लिये मनुष्य जन्म है। यद्यपि मनुष्य जन्म का होना पूर्व कृत कर्मों के भोग के निमित्त है यानी मनुष्य जन्म किये हुए कर्मों के भोगने के लिये हुआ है, उन भोगों को भोगते हुए आगे के लिये भोगों को तैयार न करना चाहिये किंतु अपने स्वरूप का बोध करना चाहिये। तब "हम संसार में क्यों आये हैं" इसका यथार्थ उत्तर यह हुआ कि जिन पूर्व कर्मों से मनुष्य शरीर प्राप्त हुआ है उन भोगों को समाप्त करते हुए परम पद प्राप्त करने को आये हैं उसके निमित्त प्रयत्न करना चाहिये। जो इस प्रकार नहीं करता उसका मनुष्य जन्म व्यर्थ जाता है अथवा स्वर्ग आदि गौण फल प्राप्त होता है। संपूर्ण फल ज्ञान से ही होता है। 'हम कौन हैं ? क्यों आये हैं ? ईश्वर कौन है ? सब प्रवृत्ति क्या है ? किस से है ? कैसे निवृत्त होती है ? नित्य क्या है ? अनित्य क्या है ? ईश्वर और ब्रह्म से क्या

सम्बन्ध है ? सच्चा संबंध कौन सा है ? झूठा सम्बन्ध कौन सा है ?' इत्यादिक जान कर सब में से भाग त्याग कर तत्त्व का ग्रहण करना ज्ञान है। जब ज्ञान पूर्ण होता है तब 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' का अनुभव होता है। सर्व वासुदेव मय जान कर कृतार्थ होने को हम संसार में आये हैं ! इस प्रकार के उपदेश से ब्राह्मण को पूर्ण बोध हुआ। प्रारब्ध शेष होने से प्रारब्ध के भाव रहित वह स्वतंत्र—निःसंदेह होकर आत्म प्राप्ति रूप परम प्रसन्नता से विचारने लगा।

दुःख किससे होता है ?

दुःख अपने को भूल जाने रूप अज्ञान से, अहं मम भाव से, कामना से, राग द्वेष से तथा अयोग्य सम्बन्ध से होता है। इस प्रकार भिन्न २ प्रकार से होते हुए भी दुःख का मुख्य कारण एक अज्ञान ही है। यदि अज्ञान न हो तो अहं मम भाव न हो, ये न हो तो कामना न हो, कामना न हो तो राग द्वेष न हो, राग द्वेष न हो तो अयोग्य सम्बन्ध न हो, अयोग्य सम्बन्ध न हो तो शरीर न हो और शरीर न हो तो दुःख न हो। सारांश यह है कि दुःख की उत्पन्न करने वाली अज्ञान से की हुई कामनायें हैं। जो कोई शंका करे कि जब दुःख अज्ञान से ही होता है तब जब अज्ञान निवृत्त हो जाय तब उन सबका नाश हो जाना चाहिये और जिस ज्ञानी का अज्ञान निवृत्त हो जाता है उसमें अहं मम

भाव, कामना, राग-द्वेष और उसका शरीर दीखता है तब कैसे जाना जाय कि अज्ञान से ही उन सब कारणों सहित कार्य रूप दुःख की उत्पत्ति होती है ? इसका उत्तर यह है कि जिन ज्ञानियों का अज्ञान निवृत्त होजाता है, ऐसे ज्ञानी जीवन्मुक्त और विदेह मुक्त दो प्रकार के होते हैं। जो जो दोष ऊपर गिनाये हैं उन सब दोषों का स्वरूप से नाश विदेह मुक्त को होजाता है और जीवन्मुक्त के शरीर आदि का स्वरूप से नाश नहीं होता तो भी उसे अज्ञान न होने से किसी प्रकार का दुःख नहीं है। जब तक उसके शरीर का पूर्व प्रारब्ध है तब तक भाव नाश रहता है और प्रारब्ध समाप्त होने पर विदेह कैवल्य में स्वरूप का भी नाश होजाता है। व्यवहारिक मनुष्यों को भाव-नाश जानने में आना कठिन है। ज्ञानी के भाव से वह नाश को प्राप्त होता है। स्वरूप से भाव प्रबल है क्योंकि स्वरूप का कारण भाव है, भाव के नाश होने से स्वरूप का समय पर अवश्य नाश होता है। यदि स्वरूप का नाश हो जाय और भाव बना रहे तो वह भाव नवीन स्वरूप धारण कर लेता है। थोड़ी बुद्धि के साथ विचार करने से मालूम होगा कि दुःख अज्ञान के सिवाय और किसी कारण से कभी नहीं होता। लोग अज्ञान को अज्ञान नहीं समझें तो भी जिससे दुःख होता है वह अज्ञान ही है; कोई कोई उसे अविवेक भी कहते हैं। आत्मा और अनात्मा को भिन्न सम-

झना, आत्मा में निष्ठा रखना, यह विवेक कहा जाता है और आत्मा अनात्मा को एकमेक करके समझना अविवेक है। आत्मा ज्ञान स्वरूप है, उससे विरुद्ध ज्ञान को अज्ञान कहते हैं। अज्ञान, माया, प्रकृति, अविद्या, भूल, भ्रम, कल्पना ये सब एक ही के नाम हैं। जब तक आत्मा उसके भाव वाला रहता है तब तक संसार रूप समुद्र में गोते खाया करता है, घबराता रहता है और जन्म मरणादि दुःखों को प्राप्त हुआ करता है। एक थोड़ी सी भूल बीज समान विशाल वृक्ष हो जाती है इस प्रकार भूलों के अनेक फल भोगे जाते हैं। पश्चात् भूल रूप वृक्ष के अनंत बीज होते हैं और इतने फैल जाते हैं कि वृक्षों का महान् अरण्य हो जाता है। इस प्रकार थोड़ी सी भूल करने वाला महान् भूल का भोग हो जाता है। चक्र वृद्धि व्याज में आरंभ में जैसे किंचित् भूल हो जाय तो अंत में महान् रूप हो जाती है ऐसे ही भूल चक्र वृद्धि सूद के समान वृद्धि को प्राप्त होती रहती है। २×२=४, ४×४=१६, ८×८=६४ के समान वर्ग रूप से बढ़ती जाती है—गुणी की गुणी होती हुई चली जाती है। इसको निवृत्त करने का उपाय यह ही है कि आद्य भूल को निकाल कर हिसाब को ठीक मिलाना चाहिये। यह आद्य भूल, जिसमें अहं मम नहीं है उसमें अहं मम मानने से होती है और ऐसा मानना अज्ञान से होता है।

शंका—अज्ञान का कोई स्वरूप दिखाई नहीं देता। तुम उसे अवस्तु रूप कहते हो, अवस्तु से किसी को दुःख होता हुआ आज तक देखा या सुना नहीं है इसलिये मेरा चित्त यह कहता है कि अवस्तु रूप अज्ञान से किसी को दुःख नहीं होता, किंतु दुःख कर्म से होता है। पूर्व में किये हुए निषिद्ध कर्मों का फल दुःख है।

समाधान—अज्ञान का स्वरूप क्यों नहीं दीखता? सब जगत् ही अज्ञान स्वरूप है। यदि तू कहे कि वह अज्ञान का कैसे है। वह तो सत्य है, तो सुनः—मैं कहता हूं कि जैसा असत्य हम मानते हैं, वैसा ही है। सत्य की व्याख्या यह है जो अखंडित, एक रस अविकारी हो वह सत्य है, जगत् इस प्रकार का नहीं है क्षण क्षण में बदलता रहता है। ऐसे बदलने वाले को हम असत्य कहते हैं। अज्ञान अवस्तु ही है, अवस्तु से कभी किसी को दुःख नहीं होता, यह कहना सत्य है परन्तु जब अवस्तु को अवस्तु जानते हैं तब दुःख नहीं होता। अवस्तु होते हुए भी जब उसे वस्तु जाना जाता है तब दुःख अवश्य होता है। जैसे अंधेरे में किसी वृक्ष की छाया देखकर यदि उसे भूत समझलें तो दुःख अवश्य होता है यद्यपि छाया अवस्तु रूप है इसी प्रकार अज्ञान अवस्तु है। जो अज्ञान को अवस्तु जानता है उसे दुःख नहीं होता और जो उसे वस्तु जानता है उसे दुःख होता है। स्वप्न का सिंह अवस्तु है परंतु स्वप्न में ऐसा बोध

नहीं होता है कि वह अवस्तु है इसलिये दुःख–भय होता है इसी प्रकार अज्ञान–संसार अवस्तु को तू सत्य मानता है इसलिये अवस्तु होते हुए भी तुझको अवश्य दुःख होता है। दुःख कर्म से होता है यह सामान्य कहना है। हम पूछते हैं कि कर्म से किस प्रकार दुःख होता है। कर्म जड़ है उसमें दुःख देने की सामर्थ्य नहीं है एक कर्म का फल जो तू दूसरे जन्म में मानता है यह किस प्रकार बने ? जो शरीर कर्म करता है वह नाश को प्राप्त हो गया। जो कर्म उस शरीर से किये थे, उसके साथ वे भी नाश को प्राप्त हो गये तो उनका फल दूसरे जन्म में किस प्रकार प्राप्त होगा ? विचार से देखा जाय तो कर्म से दुःख नहीं होता किंतु कर्म में रहने वाला जो अज्ञान है, वह अज्ञान कर्मों के सूक्ष्म संस्कार रूप भाव को पकड़ लेता है और अन्य जन्मों में उन कर्मों के फल को प्राप्त कराता है उस फल के उदय होने से दुःख होता है। यदि कर्मों से ही दुःख माने तो भी उनका कारण रूप जड़ अज्ञान ही है। अज्ञान चैतन्य के आश्रय है इसलिये उसका फल होना संभव है।

जब किसी से कहा जाता है कि तुमने ही अपने दुःख को उत्पन्न किया है–दुःख को न्योता देकर तुमने ही बुला लिया है तो वह आश्चर्य करता है और कहता है कि ऐसा कौन होगा जो अपने ही पैर में लगने के लिये परिश्रम करके कांटों का वृक्ष बोवेगा ! मनुष्य में बुद्धि है, वह पशु समान

बुद्धि रहित नहीं है, क्या वह इतना मूर्ख है कि अपना दुःख आप ही उत्पन्न कर लेता है। इसका उत्तर यह है कि मूर्ख तो अच्छा होता है परन्तु अज्ञानी उससे भी गया बीता है क्योंकि तुम जो सुख की कामनायें किया करते हो, वे कामनायें ही दुःख का न्योता हो जाती हैं इसलिये तुम्हारा बुलाया हुआ दुःख ही आकर तुमको पीड़ा देता है। कहावत है कि अंधे को न्योते तो दो मनुष्यों का भोजन तैयार कर रक्खे, अन्धा अकेला नहीं आ सकता, उसको लाने वाला दूसरा उसके साथ होता है इसलिये अन्धे के साथ उसको भी भोजन कराना पड़ता है। यदि ऐसा न करें तो अयोग्य समझा जाता है। इसी प्रकार सुख की कामना अन्धे के समान है, कामना में कुछ सूझता नहीं है इसलिये वह अन्धी है, दुःख उसके साथ आता है। सुखकी कामना दुःख रहित कभी भी नहीं होती। इस प्रकार तुम दुःख को बुलाते हो, अज्ञान की कामना से दुःख होता है। तुमने अज्ञान को धारण कर रक्खा है इसलिये सुख की कामना करते हो और दुःख उसके साथ दौड़कर आ जाता है। मनुष्य में बुद्धि अवश्य है परंतु जब मनुष्य अज्ञान भाव में होता है तब उसकी बुद्धि पशु की बुद्धि से भी विशेष मलिन हो जाती है। एक विषय में अनेक बार कष्ट उठा कर अज्ञानी फिर भी उसी में प्रवर्त्त होता रहता है इसलिये मूर्ख कहलाता है। सच मुच! जैसा तू कहता है अज्ञानी

वैसा मूर्ख ही है यदि मूर्ख बनने में तुझे लज्जा आती हो तो मूर्ख बनाने वाला—दुःखी करने वाला जो अज्ञान है, उसे छोड़ दे। मनुष्य ही अपनी भावना—वासना से सब कुछ कर डालता है। संसार भावना का फल रूप है, जब तक भावना—वासना फल देने योग्य दृढ़ नहीं होती तब तक उसका फल नहीं दीखता परन्तु ज्ञान बिना वह कभी न कभी दृढ़ होकर फल अवश्य देती है। सारांश अपने आत्मा के अज्ञान से ही जगत् और जगत् के दुःख हैं।

विरुद्धावती नगरी में अज्ञानचन्द नाम का एक राजा राज्य करता था। उसी के समान उसे प्रधान भी मिला था जिसका नाम अनुधासिंह था। इस राजा की राजधानी में दिन को रात और रात को दिन मानने का नियम था। उसी नगरी में हरिराम नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह नाम के समान गुण वाला और विद्वान् था। इस ब्राह्मण के पास एक नौकर था जो माल खा खाकर बहुत मोटा ताजा हो गया था। उस नगरी में सब से भारी मनुष्य वह ही था, कुशलचन्द उसका नाम था।

एक बार एक परदेशी मनुष्य उस नगरी में आया वह उस नगरी की रीति भाव नहीं जानता था। उसने अन्न पकाने के लिये बाजार के एक कौने की जमीनमें गड्ढा खोदा और आग सुलगा कर दाल बाटी बनाई। जब वह

भोजन करने लगा तो पुलिस के एक सिपाही ने गड्ढा खुदा हुआ देख कर उसे पकड़ लिया और कहा "तू चोर है, तूने पास के मकान में चोरी करने को यह गड्ढा खोदा है।" परदेशी चकित हो बोला "भले मानस! क्या दिन नहीं है? भला दिन में भी कहीं चोर ऐंडा लगाने की हिम्मत कर सकता है? मैंने दीवार तो नहीं तोड़ी भोजन बनाने को जमीन में गड्ढा खोदा है!" सिपाही बोला "इस राज्य में दिन को रात मानते हैं और रात दिन मानी जाती है!" यह कहकर उसे पकड़ कर पुलिस स्थान पर ले गया।

दूसरे दिन अज्ञानचन्द राजा राज सभा में विराजमान् था और उसके दहने हाथ पर महाचतुर अबुधसिंह प्रधान बैठा था। पुलिस ने आरोपी को खड़ा किया और आरोप का वर्णन किया। राजा ने आरोपी को कुछ भी कहने न दिया और शूली पर चढ़ा देने की आज्ञा दी। अबुधसिंह ने कहा "महाराज! हाल में ही एक नई शूली तैयार हुई है। उसका फल कुछ बड़ा है! उस पर प्रथम प्रयोग रूप से किसी मनुष्य को चढ़ाना चाहिये, इस प्रकार शूली की परीक्षा हो जायगी, पश्चात् चोर को शूली पर चढ़ाना चाहिये!" राजा मस्तक हिला कर बोला "यह तुम्हारा विचार उत्तम है" यह कह कर राजा ने किसी मोटे ताजे मनुष्य को नगर में से ढूंढ कर लाने की आज्ञा दी और ऐसा मनुष्य मिलने पर चोर

को छोड़ देने को भी कहा। सिपाही नगरी में दौड़े गये और सब से मोटे ताजे हरिराम के नौकर कुशलचन्द को पकड़ लाये। उसे देखकर राजा हर्षित होकर बोला "जैसा मनुष्य हम चाहते थे वैसा ही मिल गया है, शूली का और इसका मेल ठीक मिल जायगा!" राजा की आज्ञा शूली पर चढ़ने की सुनते ही कुशलचन्द बोल उठा "महा-राज! शूली पर चढ़ने की आपकी आज्ञा को मैं मानता हूँ, मुझको कुछ भी आपत्ति नहीं है, यह शूली जब मैंने देखी, तब उसमें रहने वाला अपूर्व रहस्य मेरे जानने में आया, जो मेरे कहे का प्रमाण चाहिये तो इस नगरी के महान् बुद्धिशाली पंडित हरिराम से पूछ लीजिये, कटरे के मन्दिर में वे रहते हैं।" राजा की आज्ञा से सिपाही हरिराम को लेने गये।

हरिराम ने सब बात राजा के चपरासी से सुनली, वह राजा की मूर्खता को जानता भी था, चपरासी के साथ साथ कचहरी में पहुँचा और शूली को देखते ही दूर से दण्डवत् प्रणाम करने लगा और इस प्रकार शूली के पास पहुंचने तक सैकड़ों ही दण्डवत् की होंगी! हरिराम की यह चेष्टा राजा और प्रधान देख रहे थे। हरिराम ने शूली के पास पहुँचते ही वेद मन्त्र उच्चारण करते हुए तीन प्रदक्षिणा की और फिर वह राजा के समीप हाथ जोड़कर खड़ा होगया! राजा ने कहा "पंडितजी! इस प्रकार आते

हुए शूली को प्रणाम करने का और प्रदक्षिणा करने का क्या कारण है ? क्या वह कोई महान् देव है ?" राजा का कहा हुआ कुछ सुना ही न हो इस प्रकार दर्शाता हुआ हरिराम बोला "गो ब्राह्मण प्रतिपाल ! महाराजाधिराज ! मैं इस शूली पर चढ़ना चाहता हूं ! कृपा करके मेरे हित निमित्त अपने अनुचरों को मुझे सत्वर शूली पर चढ़ा देने की आज्ञा दीजिये।" राजा ने कहा "पंडितजी ! इसका कारण तो बताओ, आप शूली पर चढ़ने को इतने उत्सुक क्यों हो रहे हैं ?" हरिराम बोला "महाराज ! आज शूली के दर्शन मात्र से मुझे जो लाभ हुआ है, उससे मैं अपना अहो भाग्य समझता हूं, यह प्रसंग अनेक जन्मों के किये हुए पुण्य कर्म का फल रूप मुझे प्राप्त हुआ है ! यह शूली अत्यन्त पवित्र मुहूर्तमें बनी है ! यह शूली क्या है, अनेक प्रकार के शूलों को निवारण करने वाला महान् देव है ! इस शूली में तेतीस कोटि देवताओं का वास है। इस-लिये जो कोई इस पर चढ़ेगा वह शाश्वत स्वर्गीय सुख भोगने के लिये तत्काल स्वर्ग में चला जायगा ! यह शूली पूर्व शिव लोक में थी, इसके प्रभाव से ही शंकर का नाम शूल पाणि पड़ा है ! हे राजा ! तेरे अत्यन्त धार्मिक योग से तेरे देश में इस शूली का आविर्भाव हुआ है ! इस शूली को स्वर्ग पहुंचाने वाला विमान कहने में अतिशयोक्ति नहीं है !"

हरिराम के मुख से शूली का इस प्रकार का माहात्म्य सुन कर राजा बोला "हे पंडित महाशय! मैं आपका आभार मानता हूं कि आपने इस शूली का माहात्म्य सुनाया है, अब तो प्रथम मैं ही इस शूली पर चढ़ना चाहता हूं! प्रथम मैं ही स्वर्ग सुख प्राप्त करूंगा।" हरिराम बोला "हे राजन्! शूली स्वयं आपकी है, आप चाहे जिस समय इस शूली पर चढ़ सकते हैं, यदि आप आज मुझे इस शूली पर चढ़ जाने देंगे तो आपका इस गरीब ब्राह्मण के ऊपर बड़ा उपकार होगा!" राजा पुकार कर बोल उठा "नहीं नहीं मैं इस शुभ मुहूर्त को हाथ से न जाने दूंगा। मैं ऐसा मूर्ख नहीं हूं! इस राज्य का राजा होने से सब से प्रथम स्वर्ग जाने का मेरा अधिकार है।" हरिराम बोला "महा-राज, आपकी इच्छा को कौन रोक सकता है? अच्छा, प्रथम आप ही स्वर्ग को सिधारिये। आप वहां भी राजा ही बनेंगे। आपको वहां प्रधान की भी आवश्यकता होगी।" राजा बोला "यह मेरा महा बुद्धिशाली प्रधान है। ऐसा प्रधान मुझे और नहीं मिल सकता। उसे भी मैं साथ ही स्वर्ग में ले जाऊंगा। हे शूली पर चढ़ाने वाले! मेरे बाद प्रधानजी को भी अवश्य शूली पर चढ़ा देना।"

हरिराम ने शूली की पूजा की, राजा और प्रधान को रक्त वर्ण के वस्त्र पहनाये गये, गले में फूलों की माला

डाली गई, इस प्रकार कुछ विधि कराके हरिराम ने राजा और प्रधान दोनों को शूली पर चढ़ा दिया । यह देखकर प्रजा जन ब्राह्मण की बुद्धिमत्ता, समय सूचकता, दक्षता और धूर्तता की मुक्त कंठ से प्रशंसा करने लगे । उसी समय हरिराम राजसिंहासन पर बैठाया गया उसने दीर्घ काल पर्यन्त अत्यन्त दक्षता से राज्य किया और सब प्रकार से सबको आनन्द ही आनन्द रहा ।

अज्ञानचन्द राजा अज्ञानी था । उसका प्रधान भी मूर्ख अज्ञानी था । दोनों में विवेक की छींट भी न थीं । वे विवेक रहित सब कार्य करते थे । स्वर्ग की कामना के कारण अपराधियों के लिये बनाई हुई शूली पर आप ही चढ़ कर मरण को प्राप्त हुए । हरिराम की चतुराई ने अज्ञानियों को अज्ञान का फल दिलाया । यदि राजा स्वर्ग की कामना न करता, उसमें अज्ञान न होता तो वह विना मौत न मरता । उसने जो मरण दुःख भोगा वह मात्र अज्ञान और कामना ही का फल था ।

अज्ञानचंद राजा जीव है, अबुधसिंह प्रधान अज्ञान वाली बुद्धि है । जैसे को तैसा ही मेल प्राप्त हुआ है । विरुद्धावती नगरी संसार है, जहां विवेक से विरुद्ध ही सब कार्य होते हैं, जो चोर नहीं है उसे चोर समझा जाता है। विदेशी आत्मा है, उसे चोर मान शूली पर चढ़ा रहे हैं ।

ज्ञान भाव रूप कुशलचंद हरिराम का नौकर है, हरिराम ज्ञान है, ज्ञान रूप हरिराम की युक्ति से अज्ञान रूप राजा और प्रधान का नाश होता है। अज्ञान के राज्य की निवृत्ति होकर ज्ञान के राज्य की स्थापना होती है। इस प्रकार समझ में आ गया होगा कि अज्ञान से की हुई कामनायें ही दुःख का हेतु हैं।

दो भाई बहिन थे। बहिन एक शहर में विवाही गई थी। जब भाई छोटा था तब ही उनके माता पिता मर गये। काका मामा के कष्ट भोगता हुआ वह कुछ बड़ा हुआ। जगत् में निर्धनी का कोई नहीं है इसलिये वह अपने कुटुम्ब में जहां कहीं जाता था वहां उसका निरादर ही होता था, उमर बहुत बड़ी न थी, विचारा पढ़ने भी न पाया और कोई हुनर भी उसे नहीं आता था। किसी की पूर्ण देख भाल विना वह स्वतंत्र मिजाज का हो गया था। ऐसी हालत में दुःख के सिवाय उसे और क्या प्राप्त होता? एक दिन उसे कुटुम्ब और ग्राम के ऊपर तिरस्कार आया, उसने सब को छोड़ कर भाग जाने का विचार किया। बारह वर्ष की उमर में वह ग्राम से भाग निकला। पैदल चलते हुए जो कुछ कोई दे देता, खाते हुए कई दिन में वह मुम्बई शहर में पहुंचा और चलते चलते जहां जहाज टिकते हैं वहां जा पहुंचा और नौकरी की खोज करने लगा। कोई तो उसे छोटी उमर का जान कर "नौकरी

क्या करेगा !" यह कह कर हंसता, किसी ने उसे कोलसा डालने का काम बताया, छोटी उमर और कमजोर होने से उससे वह काम न हुआ। इस प्रकार वह तीन दिन तक भटकता रहा, अन्त में एक जहाज के कप्तान को दया आई, उसने उसे अपने जहाज पर खाने के बदले रख लिया। वह जहाज जंजिबार (एफ्रीका) की तरफ आया जाया करता था। वह कप्तान की परतन्त्रता में रहने से तीन मास में जहाज का कुछ काम सीख गया, खाने उपरांत पांच रुपये की तनुख्वाह हो गई। जहाज ने हिन्दुस्थान और एफ्रिका के कई चक्कर किये। अब उस लड़के के पास कोई सौ रुपये जुड़ गये थे। जब वह जहाज एफ्रिका में गया तब वहां वह उतर पड़ा—नौकरी छोड़ दी। कई हिंदुस्थानी उसे मिले जो एक बगीचे में से हरा मेवा टोकरी में भरकर लाया करते थे और शहर में वेचा करते थे। इसमें अच्छा लाभ रहता था। उम्मर (उस लड़के का नाम) ने भी वही काम करना आरम्भ किया और एक वर्ष में उसके पास एक हजार रुपये जमा हो गये। उस रुपये से उसने एक छोटी सी दुकान की, उसमें सौदागरी का माल रखने लगा। दो वर्ष में दुकान खूब जम गई। दुकान को बढ़ाने का विचार हुआ, उस समय एक यूरोपियन से उसका मेल हुआ उसने उसको नौकर रख लिया, दुकान खूब चली और पांच साल में उम्मर दो लाख का

आसामी हो गया। जो यूरोपियन नौकर रक्खा था उसका दुकान में चौथाई हिस्सा कर दिया गया। उम्मर को घर छोड़े हुए दश वर्ष हुए थे। दुकान के हिस्सेदार को देख भाल पर रखकर वह बहुत सी अशरफियां और जवाहरात लेकर अपने ग्राम जाने को हिन्दुस्थान आने वाले जहाज में बैठा और मुम्बई उतर अपनी बहिन के ग्राम में आया और बहिन के घर गया। उत्तम उत्तम कपड़े, ट्रंक और जवाहरात के बोक्स साथ ही थे। बहिन भाईको देखकर प्रसन्न हो जी में सोचने लगी, "भाई बहुत कमाई करके लाया है, अब मौज मजे उड़ावेगा, यदि किसी प्रकार से यह माल मेरे पास रह जाय ऐसा उपाय किया जाय तो बहुत ठीक हो!" धन की कामना ने भाई के प्रेम को भुला दिया। इस ईर्षा वाली दुष्ट बहिन ने भाई को मार डालने का निश्चय किया। रात्रि को साले बहनोई दोनों के सोने को खाटें बिछाई गईं। एक दीवार की तरफ थी, दूसरी आगे थी। आगे वाली भाई के सोने को और दीवार की तरफ की पति के सोने को बिछाई थी। खा पीकर अपनी अपनी खाट पर पड़े हुए दोनों बात चीत करते रहे। बहुत देर हो जाने से स्त्री सो गई, उसके भाई को भी नींद आ गई। पति को नींद न आई उसने विचार किया "आज मेरे घर पर साला बहुत माल लेकर आया है, चोरों का घर में आ जाना संभव है, इसलिये खाट को किवाड़ों के पास

बिछाना चाहिये !" यह स्त्री के समान दुष्ट आचार वाला न था उसने अपने विचार के समान ही किया, फिर उसे भी नींद आ गई। स्त्री कुछ रात बीतें जागी और एक पैना छुरा लेकर चली। बत्ती बुझ गई थी, दीवार के सहारे की एक खाट छोड़कर दूसरी खाट के पास जा उस पर सोये हुए के गले में उसने छुरा मारा जिससे वह मर गया। मरते समय वह कुछ चिल्लाया परन्तु विशेष कुलाहल न हुआ। स्त्री अपनी कामना निर्विघ्न पूर्ण हुई समझ कर सो रही परन्तु उसे नींद न आई "अपने भाई को मार देने का दोष मुझ पर आवेगा, इसलिये रात में ही उसे गाड़ देना चाहिये" ऐसा विचार कर ज्योंही वह उठ कर चली त्योंही खटका सुन उसका भाई जाग उठा और बोला "कौन है?" भाई के बोलते ही स्त्री ने जान लिया कि मैंने अपने पति को मार डाला है। घर से बाहर जाने लगी, लोगों ने उसे पकड़ लिया तब तो वह पागल हो गई। भाई अपनी दुष्टा बहिन को छोड़कर अपने ग्राम चला गया और वह दुष्टा स्त्री विधवावस्था में कष्ट पाती हुई पत्थर के टुकड़े के समान अभी तक भटक रही है। खाने पीने तक का ठिकाना नहीं है। उसका भाई अभी तक आनन्द से है।

दुष्टा स्त्री को कामना—धन की इच्छा से 'यह मेरा भाई है' यह भाव न रहा, अज्ञान में पूर्ण घिर गई और

भाई की हिंसा करने में प्रवृत्त हुई। उम्मर का प्रारब्ध प्रबल होने से वह बच गया और दुष्टा विधवा होकर दुःख पाती रही। उसके इस दुःख का हेतु अज्ञान—कामना—धन का लोभ ही था।

सिद्धान्त—परम पुरुषार्थ और प्रपंच की वासना दोनों भाई बहिन हैं। परम पुरुषार्थ का ऐश्वर्य देखकर प्रपंच की वासना को उसे लेने की इच्छा हुई इसलिये उसने परम पुरुषार्थ को मार डालने की युक्ति की परन्तु परम पुरुषार्थ न मरा, उसके बदले वासना का पति जो जीव भाव था, उसका मरण हुआ और प्रपंच की वासना पति रहित रह गई है और भटकती फिरती है। परम पुरुषार्थ की दुष्टा बहिन दूर होने से अब वह आनन्द में है। हमेशा के लिये दुःख से रहित हुआ है।

सम्बन्धके ज्ञानसे दुःख होता है।

दुःख सब को अप्रिय है, दुःख कोई नहीं चाहता। दुःख प्राप्ति के निमित्त कोई यत्न नहीं करता तो भी दुःख आये बिना नहीं रहता, भोगना ही पडता है। जगत् में हर एक शरीरधारी चाहता है कि मुझे दुःख न हो परन्तु मात्र इस प्रकार चाहने से दुःख की निवृत्ति नहीं होती, जब दुःख के कारण की खोज कर के उस कारण की निवृत्ति की जाय तब कार्य रूप दुःख की निवृत्ति होना संभव है।

दुःख सम्बन्ध से होता है विना सम्बन्ध कोई दुःखी नहीं होता चाहे यह सम्बंध कायिक हो वाचिक हो या मानसिक हो। वास्तविक जगत् में कोई दुःख नहीं है ऐसे ही आत्मा में भी कोई दुःख नहीं है क्योंकि वह सुखस्वरूप है। आत्म अनात्म एक दूसरेसे विरुद्ध हैं इसलिये उन दोनों का सम्बंध असंभवित है। न होते हुए भी उन दोनों का सम्बंध मान लेना अज्ञान है। अकेले सम्बंध से भी दुःख नहीं होता, सम्बंध के ज्ञान से दुःख होता है।

जीव को मायिक व्यवहारिक अथवा प्रातिभासिक सम्बंध जो अज्ञान के हैं उनसे दुःख होता है। सम्बंध का ज्ञान रूपांतर वाला है इसलिये उसके सहारे रहने वाला दुःख भी रूपांतर वाला है। जैसे सम्बंध के ज्ञान से दुःख होता है ऐसे ही मायिक सुख भी सम्बंध के ज्ञान से होता है। मायिक सुख की चाहना से सम्बंध और सम्बंध का ज्ञान होता है, इसलिये प्रयत्न विना ही दुःख होता है। जो मायिक सम्बंध और उसके ज्ञान का अभाव किया जाय तो किसी प्रकार का दुःख न हो।

मथुरादास नामक एक वैश्य साधारण स्थिति, नीति और कुटुंब वाला था। उसका एक पुत्र और एक पुत्री थी पुत्री का विवाह हो गया था और पुत्र वृन्दावन को, पिता ने अपना परिश्रम से कमाया हुआ धन खर्च कर के, पढाकर

विद्वान् बनाया था। उसका विवाह भी हो गया और काश्मीर में उसे एक अच्छी नौकरी मिल गई। मथुरादास अब बूढ़ा हो गया था और कुछ कार्य करने योग्य नहीं रहा था। उसकी स्त्री भी शिथिल हो गई थी। मथुरादास लडके को परदेश भेजना नहीं चाहता था परंतु उनके कुटुंब का निर्वाह उसी की कमाईसे होता था इसलिये मथुरादास ने वृन्दावन को अप्रसन्नता से दूर देश में भेज दिया। वृंदावन को दो सौ रुपये मासिक मिलते थे उसमें से पचास रुपये वह अपने पिता को भेजता रहता था।

एक वर्ष पीछे एक वार वृंदावन अपने घर आया और कुछ दिन वहां रह कर अपनी स्त्री को साथ लेकर नौकरी पर चला गया। कई वर्ष वीत गये परंतु उसे घर जाने के लिये छुट्टी न मिल सकी क्योंकि उसका काम जोखम का था, जब तक कोई योग्य पुरुष न मिले तब तक वह अपनी जगह छोड नहीं सकता था। पांच वर्ष हो गये वृंदावन घर न आ सका। वृंदावन माता पिता से मिलना चाहता था और माता पिता का जी भी उसके देखने को भटकता था। मथुरादास का शरीर भी अब ठीक नहीं रहता था इसलिये उसने वृंदावन के बुलाने को पत्र लिखा। उसके उत्तर में वृंदावन ने लिखाः—

पिताजी ! मैं आ नहीं सकता ! मेरा जी आपके दर्शनों को बहुत उत्सुक हो रहा है। कोई योग्य पुरुष मिले

विना मैं देश में नहीं आ सकता। जो आपकी आरोग्यता यहां आने योग्य हो और आप यहां आ जांय तो अच्छा है। यदि आप ऐसा कर सकें तो आपके लिखने पर आने के खर्च का रुपया भेज दूंगा।

मथुरादास की तबियत कुछ ठीक थी उसने पुत्र के पास जाने का निश्चय किया और स्त्री और पुत्री को घर पर छोड कर वह पुत्र से मिलने को चला। रुपया उस के पास था इस लिये पुत्र के पास से मंगवाने की आवश्यकता न थी। वृद्ध शरीर से कष्ट पाता हुआ मुसाफिरी करता हुआ कई दिन के पीछे रात्रि के समय वह एक शहर में एक धर्मशाला में पहुँचा। धर्मशाला मनुष्यों से भरी हुई थी, एक कमरे के बाहर एक मनुष्य के पड़ने योग्य स्थान था। धर्मशाला के जमादार से विनती करके मथुरादास उस स्थान पर रात्रिको विश्रांति लेने पड़ रहा। सोते समय उसे खांसी बहुत आने लगी। परिश्रम से दबी हुई श्वास उखड़ आई। बहुत खांसने के पीछे थोड़ा सा कफ निकल जाता था। पांच पांच मिनट तक खांसी बन्द नहीं होती थी, विचारा बहुत कष्ट पाता था।

पास के कमरे में एक सभ्य पुरुष ठहरा हुआ था। उसके साथ उसकी स्त्री, एक बच्चा और एक नौकर था। उन चारों को बाहर पड़े हुए बूढे के खांसने से बारह बजे

तक नींद न आई। सभ्य पुरुष ने बूढे से दूर चले जाने को कहा परन्तु वह वहां से न हटा, तब सभ्य पुरुष ने अपने नौकर से जमादार को बुलाकर कहा "आप इस बूढे को यहां से हटा दीजिये" सभ्य पुरुषों से जमादार को कुछ मिला करता था इसलिये लालची जमादार ने मथुरादास की गठरी उठा, उसको हाथ पकड़ कर बलात्कार से धर्मशाला के बाहर निकाल दिया।

विचारे, गरीब, अशक्त, फटे टूटे वस्त्र वाले वृद्ध ने धर्मशाला के बाहर रस्ते के ऊपर एक कूए के समीप रात्रि व्यतीत की! सुबह होते ही धर्मशाला के सब मनुष्य दिशा, फरागत, स्नानादि अपने अपने कार्य में प्रवृत हुए, मथुरादास भी दिशा फरागत होकर दांतौन कुल्ला करने लगा। उसी समय जिस सभ्य ने उसे निकलवा दिया था वह भी वहां आकर दांतौन कुल्ला करने लगा। नौकर हाथ धुलाने और स्नान कराने को पास खड़ा था। वृंदावन ने अपने पिता को देखा परन्तु उसकी दीन दशा होने के कारण उसे न पहिचाना। इतने ही में एक मनुष्य ने आकर मथुरादास से पूछा "आप कहां जा रहे हैं?" मथुरादास ने कहा "मेरा पुत्र काश्मीर में नौकर है, बहुत दिनों से मैंने उसे देखा नहीं है, मैं उससे मिलने जा रहा हूं।" इतनी बात करने में वह दो बार बहुत देर तक खांसा। सभ्य पुरुष ने इतनी बात सुन कर बुड्ढे की तरफ दृष्टि की तो उसे मालूम हो गया कि

रात्रि में जिसको गालियां दी थीं और निकलवा दिया था वह ही यह बुड्ढा है। मथुरादास ने भी अपने पुत्र को नहीं पहिचाना था क्योंकि उसकी सूरत शकल और वस्त्रादिक बदल गये थे। सभ्य पुरुष अपने पिता को पहिचान कर दांतौन छोड़कर प्रेमावेश में उठा और बुड्ढे के पैरों पर जाकर गिरा। बुड्ढे ने आश्चर्य सहित देखा तो वह उसका पुत्र वृन्दावन ही था। दोनों आपस में प्रेम पूर्वक मिले। रात्रि को अपने बुड्ढे पिता को दुःख देने के कारण वृन्दावन बहुत दुःखी हुआ और उसे अपने कमरे में ले जाकर सुपुत्र अनुसार वर्तांव करके प्रसन्न हुआ। पश्चात् पिता पुत्र में यह बातचीत हुई:—

मथुरादासः—पुत्र ! तुझे छुट्टी तो मिलती ही नहीं थी ! अब तू कहां जा रहा था ?

वृन्दावनः—पिताजी ! मैं आपके पास ही आ रहा था ! छुट्टी मिलना संभव न होने से आपको मिल जाने को और रुपये मंगवाने को लिखा था, आपका पत्र मिला नहीं, विना दाम भेजे आप इतनी जल्दी चले आओगे यह भी मुझे अनुमान न था दैवयोग से मेरा मालिक आ गया, मैंने उससे घर जाने की आज्ञा मांगी, तो उसने दो मास की छुट्टी दे दी। जब तक मैं लौटकर न जाऊँगा तब तक काम काज की देख भाल मालिक करेगा। ऐसा

संयोग हो जाने से मैं स्त्री पुत्र सहित घर को चल दिया। रात्रि को इस धर्मशाला में ठहरा, आप पहिचानने में न आये इसलिये जमादार को बुलाकर मैंने आपको धर्मशाला से बाहर निकलवा दिया, भारी अपराध हुआ! अनजान और अंधा बराबर होते हैं इतनी खैर हुई कि सुबह आप मिल गये और मैंने आपको पाहिचान लिया, यदि इस धर्मशाला में मुलाकात न होती तो आप बहुत दुःखी होते! आप काश्मीर पहुंचते और मैं घर पर पहुंच जाता, जब मैं वहां न मिलता तो बहुत कष्ट होता। ईश्वर की कृपा है जो उसने आने वाली महान् आपत्ति को थोड़े ही में निवृत्त कर दिया।

पश्चात् सब कुटुम्ब कुछ दिनों में अपने घर पर पहुंच गया।

पिता पुत्र का सम्बंध आत्म दृष्टि—अद्वैत आत्मामें नहीं है परंतु अज्ञान के मायिक, व्यवहारिक दशा में है। पिता पुत्र का सम्बंध होते हुए भी वृन्दावन को जब सम्बंध का ज्ञान न हुआ तब पिता को धर्मशाला से निकलवा कर उसने सुख माना, सुबह जब पिता को पहिचाना तब रात्रि के किये हुए बर्ताव से वह दुखी हुआ। जिस समय उसने पिता को धर्मशाला से बाहर निकलवाया था तब उसे कोई कंगाल मनुष्य समझा था। जो ऐसा ही होता तो सुबह उसे दुःख नहीं होता सम्बंध ज्ञान से ही दुःख हुआ। इसी

प्रकार बूढा जब धर्मशाला के बाहर निकाला गया था तब वह अपने जी में कुढ़ा था, वह भी अन्य समझ कर ही कुढ़ा था और प्रातःकाल जब उसे मालूम हुआ कि वह मेरा ही पुत्र है तब मन से कहे हुए कुवचनों का पश्चात्ताप किया। सम्बंध प्रथम न था, पीछे हो गया था ऐसा न था सम्बंध तो जैसे का तैसा ही था परंतु दुःख जो हुआ वह सम्बंध के ज्ञान से ही हुआ। रात्रि में सम्बंध के अज्ञान से पिता को दुःख, पुत्र को सुख और सम्बंध के ज्ञान से रात्रि के वर्ताव का दोनों को दुःख हुआ। पिता के अज्ञान से पिता होते हुए भी पुत्र पिता के सुख से वंचित रहा इसी प्रकार आद्य तत्त्व का अज्ञान ही जीव को आत्म सुख से वंचित रखता है।

जिससे हम सम्बंध रखते हैं क्या वह पदार्थ हमारे सम्बंध के योग्य है? क्या उस पदार्थ की और हमारी महत्वता समान है? क्या पदार्थ और हम एक ही जाति के हैं? इसका विचार करना चाहिये। यह बात शास्त्र और संतों के अनुभव से जानी जाती है। प्रथम तो हम ही अपने को नहीं जानते, जो हम नहीं है उसको हम मान बैठे हैं; माना हुआ हम मायिक है और मायिक पदार्थ से सम्बंध वाला है। आत्मा मायिक पदार्थ के सम्बंध के योग्य नहीं है। आत्मा के महत्व को भूल कर जब हम अपने को एक क्षुद्र प्राणी ही मान बैठें तो क्षुद्र से ही सम्बंध होना

संभव है। यह सम्बंध आत्मा से नहीं होता, अज्ञान से ही होता है और अज्ञान का ही होता है। आत्मा और मायिक पदार्थ एक जाति नहीं है एक दूसरे से विरुद्ध है, प्रकाश और अंधेरे के समान विरुद्ध स्वभाव वाले हैं, उनका सम्बंध हो नहीं सकता किंतु अज्ञान असंभावित को संभावित करके दिखलाता है। जो सम्बंध तीनों काल में नहीं है वह सम्बंध अज्ञान से दृढ़ होना अनुभव में आता है। जब विचारवान् पुरुष अपने आत्म तत्त्व को यथार्थ रीति से जान कर उसमें टिकता है तब वह दुःख के हेतु रूप असत्य सम्बंध ज्ञान को निर्मूल कर देता है। जो परमानन्द प्राप्त करने और जगत् के अनेक प्रकार के दुःखों से छूटने की इच्छा हो तो दुःख के हेतु रूप सम्बंध और सम्बंध के ज्ञान को छोड़ो। 'मैं' 'मेरा' यह सम्बंध है, उसका ज्ञान सम्बंध का ज्ञान है। शरीर और आत्मा को एक समझ कर 'मैं' बनता है और 'मैं' बनने के पश्चात् अनेक प्रकार का 'मेरा' बनता है। यह ही दुःख रूप है।

जैसे कोई मनुष्य अपुत्र होता है और उसके कुटुम्ब में औरों के जो लड़के होते हैं तो अपुत्र मनुष्य उन लड़कों को औरों का लड़का समझता है, यदि उनमें से किसी को कष्ट होता है तो वह दुःखी नहीं होता परंतु यदि वह उन्हीं लड़कों में से किसी को गोद ले लेता है अर्थात् अपना लड़का बना कर अपनी मिलकत का वारिस ठहरा

लेता है तो उस समय से वह दूसरे के लड़के को अपना लड़का मानने लगता है। जिस लड़के का दुःख उसे प्रथम मालूम नहीं होता था, वह ही लड़का अब बीमार पड़ता है तो वह मनुष्य बहुत चिन्तातुर होता है—अपने को दुःखी मानता हैं। विचार कर देखो तो यह सम्बंध कोई वास्तविक वस्तु नहीं है, माना हुआ ही सम्बंध है। ऐसे ही मनुष्य एक शरीर से सम्बंध मान कर अनेक सम्बंध मान बैठता है। उस सम्बंध का ज्ञान जन्म, मरण संसार दुःख का हेतु हो रहा है। किसी का पुत्र परदेश में मर जाय, जब तक पिता को उसके मरने की खबर न हो तब तक वह दुःखी नहीं होता जब कोई कहता है कि तेरा पुत्र मर गया तब दुःखी होकर रोने लगता है यदि सम्बन्ध सच्चा होता तो पुत्र के मरते ही पिता को दुःख होना चाहिए।

सब प्रकार के सम्बन्धों का समावेश तीन सम्बंधों में होता है १ उपादान सम्बंध २ संयोग सम्बंध और ३ संसर्ग सम्बंध। इन तीनों प्रकार के सम्बंधों में से आत्मा का किसी से किसी प्रकार का सम्बंध नहीं हो सकता क्योंकि आत्मा किसी का कार्य कारण नहीं है इसलिये उसका किसी से उपादान सम्बंध नहीं है। आत्मा सत् स्वरूप है, उसके सिवाय सब असत् है इसलिये उसका किसी के साथ संयोग सम्बंध नहीं है। उसका किसी के साथ संसर्ग सम्बंध यानी कभी कुछ सम्बंध होना भी नहीं है क्योंकि वह असंग है।

तो भी जीव को सम्बन्ध मालूम होता है, यह जीव का अज्ञान है। सब प्रकार का सम्बन्ध मायिक कल्पना में है इसलिये वास्तविक सम्बन्ध नहीं है और माना जाता है इसीसे दुःख उत्पन्न करता है। ऊपर दिखाया हुआ सम्बन्ध ही दुःख रूप नहीं है किन्तु सम्बन्ध का ज्ञान दुःख रूप होता है।

कोई कोई यह शंका करते हैं कि सम्बन्ध विना जगत् का व्यवहार किस प्रकार होगा एक दूसरे के सम्बन्ध करके ही ब्रह्मांड स्थिति को प्राप्त हुआ है यदि सम्बन्ध न हो—न रक्खा जाय तो किसी की व्यवस्था ही न रहे। छोटे बच्चे जो बेसमझ हैं यदि माता पिता उनसे सम्बन्ध न रक्खें तो वे किस प्रकार वृद्धि को प्राप्त हों? पशु पक्षी आदिक सम्बन्ध के कारण से ही अपनी संतति को पाल कर बड़ी करते हैं। राजा प्रजा के सम्बन्ध से ही देश की व्यवस्था चलती है। विषय के सम्बन्ध से इन्द्रियों की और इन्द्रियों के सम्बन्ध से विषय की सार्थकता है, सम्बन्ध न रक्खा जाय तो दोनों ही व्यर्थ हो जांय। इसी प्रकार इन्द्रियों का सम्बन्ध मन से और मन का सम्बंध इन्द्रियों से न हो तो वे दोनों किस अर्थ के? मन का सम्बन्ध जीव से न हो तो जीव कुछ भी कार्य नहीं कर सकता। इस विचार से सिद्ध होता है कि सम्बन्ध छोड़ना असम्भवित है और ऐसा करने से

होने वाला सुख—मोक्ष सुख भी असम्भावित है। संसार सम्बन्ध का है, संसार में से मोक्ष में जाना यह भी एक सम्बन्ध है। ऐसे ही ईश्वर का सम्बन्ध जीव से है। परम्परा से जब ऐसा सम्बन्ध चला आया है और स्वाभाविक है तब उसे किस प्रकार हटा सकते हैं? माया को जड़ कहते हैं और परब्रह्म को अक्रिय बताते हैं, दोनों के सम्बन्ध रूप अज्ञान से ही सब चेष्टा होती है तब परब्रह्म भी सम्बन्ध रहित किस प्रकार हो सकता है?

इसका समाधान यह है:—सम्बन्ध को ठीक न समझने और प्रपंच में फँसे हुए भाव से ऊपर की शंका की गई है, यह ठीक नहीं है। हम कहते हैं कि तुम्हारा सम्बन्ध कुछ है ही नहीं। जिसको तुम सम्बन्ध मान रहे हो उसमें भी तुम्हारा सम्बन्ध नहीं है, इसलिये सम्बन्ध तुम से छूटा हुआ ही है। मात्र मान रहे हो, उस मानने को छोड़ देना है, तुम्हारे सम्बन्ध रहित निश्चय में आने से जगत् की कुछ भी हानि नहीं होती और तुम्हारा शेष संसार भी सुख पूर्वक चलेगा, जगत् के लोगों को भी तुम से लाभ होगा। अज्ञान का सम्बन्ध छोड़ने से सब प्रकार के दुःखों से छूट जाओगे। हमारा और संसार का निर्वाह किस प्रकार होगा? यह भी शंका न रहेगी। निर्वाह अज्ञान से नहीं होता, निर्वाह कर्म से होता है। अज्ञान और उसके ज्ञान को छोड़ने से कर्म व्यवस्था में जगत् की किसी प्रकार की

हानि नहीं होती ब्रह्मांड के सब पदार्थ कर्म की रस्सी में बंधे हुए हैं, कर्म की निवृत्ति विना अज्ञान निवृत्ति करने में तुम्हारी या संसार की किसी की हानि नहीं है। संसारासक्ति की हानि अवश्य है, यदि तुम उस आसक्ति को छोड़ना नहीं चाहते तो हमारे उपदेश को मत ग्रहण करो। प्रत्येक अपने अपने साथ पूर्व प्रवाह रूप कर्म वेग को लाया है, वह अपना काम करता ही रहता है उसके बीच में तुम सम्बन्ध और सम्बन्ध के ज्ञान वाले कूद पड़ते हो इसी से दुःख भोगते हो, ऐसा न करने से कुटुम्ब प्रेम, जाति प्रेम, देश प्रेम और शास्त्र वर्णित शुभ गुणों की हानि नहीं होती किंतु निर्मल, कामना रहित भाव से उन सब की विशेष प्रतिष्ठा होती है। कुटुम्ब, जाति, देश प्रेम आदिक का संकुचित भाव, निर्मल, दृढ़ और विकसित हो जाता है। जो भाव आड़ सहित था वह आड़ रहित होकर बल और उत्साह संयुक्त हो जाता है। अज्ञान छोड़ने से संपूर्ण सम्बन्ध नहीं छूटता परन्तु अज्ञान का हेतु रूप सम्बन्ध ज्ञान ही छूट जाता है। ब्रह्मांड अज्ञान का कार्य होने पर भी सम्बन्ध ज्ञान छूटने से उसमें किसी प्रकार की अव्यवस्था नहीं होती। माता पिता जो बाल्यावस्था में बच्चे का पोषण करते हैं उसमें सम्बन्ध ज्ञान की आवश्यकता नहीं है, प्रवाह रूप से प्राप्त हुए कर्म पोषण किया करते हैं। प्रवाह रूप सम्बन्ध ज्ञान विशेष सम्बन्ध ज्ञान नहीं है। हमको जब माता पिता

ने पाल कर बड़ा किया है तो हमारा भी अपने बच्चों को बड़ा करना प्रवाह रूप कर्तव्य है । पशु पक्षियों में विशेष बुद्धि नहीं है तो भी अपना कर्तव्य करते ही हैं। मनुष्य उनसे विशेष बुद्धि वाला होने पर भी विशेष अज्ञान का ग्रहण करके विशेष दुःख का भागी होता है। राजा, प्रजा, स्त्री, पुरुष आदिक सब सम्बन्ध कार्य निमित्त है, वह दुःख रूप नहीं होता किन्तु सम्बन्ध के ज्ञान की विशेष आसक्ति दुःखजनक है उसके छोड़ने से व्यवहार उच्च प्रकार से चलता है और दुःख नहीं होता। विषय, इन्द्रिय, मन आदिक का सम्बन्ध भी ऐसा ही समझो। जब आसक्ति रहित सम्बन्ध से मनुष्य मोक्ष पर्यन्त जाने के योग्य हो जाता है तो यदि वह व्यवहारिक कार्य उत्तम रीति से करे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

जमना नामका एक किसान था। उसके यहां बैल, भैंस और गायें थीं। वह अपने चौपायों के लिये प्रति दिन खेत से घास खोद कर और काट कर लाया करता था। एक दिन खड़े हुए घास को काट रहा था, तब उसे मालूम हुआ कि मुझे चैंटी ने काटा है इसलिये उसने उसके काटने को कुछ न गिना और घास का बोझा बांध कर घर में लाकर डाल दिया। उसके यहां घास का फेर रहता था। कभी कभी तीन तीन चार चार दिन की घास एकत्र होजाती थी। चार दिन पीछे जब उसने गाय को घास डालने के लिये

घास की पूली खोली तो मालूम हुआ कि पूली में सर्प कट कर बंध गया है। उसे देखते ही चार दिन पहले चेंटी के काटने का जो अनुमान हुआ था वह याद आया। तब वह सोचने लगा "उस दिन चेंटी ने नहीं काटा था, हाथ से दबा हुआ यह सर्प था, मुझे काट कर पूली में बंध गया।" इस प्रकार सोच करता हुआ वह खाट में जा पड़ा, उसके शरीर में सर्प का विष व्यापने लगा और अनेक औषधि करने पर भी उसके प्राण न बचे।

सर्प ने जमना को काटा था, उसने उसे काट कर बांधा भी था परन्तु जब तक उसे सर्प के काटने का ज्ञान न हुआ तब तक विप न चढ़ा, जानने के साथ विष चढ़ने लगा और अन्त में वह मर गया इससे भी सिद्ध होता है कि काटना भी काटना नहीं है जब उसका ज्ञान होता है तब ही काटना काटना रूप होता है।

एक मनुष्य एक ग्राम में रहता था। उसका मकान दो मंजिला था। नीचे गाय बांधी जाती थी ऊपर वह रहता था। एक दिन रात्रि को किवाड़ खुले रह गये। गाय कुछ खट पट करती मालूम हुई। उस मनुष्य ने अन्धेरे ही में उठ कर गाय को खूंटे से बांध दिया। जब सुबह उठ कर देखा तो खूंटे पर गाय बंधी हुई न थी परन्तु गाय के स्थान पर एक शेर बंधा था! वह उसे देखकर आश्चर्य करने लगा और

समझा कि मैंने ही रात्रि को शेर बांध दिया था। ऐसा विचारने से उसके अंतर में बड़ा भारी आघात हुआ और वह उसी क्षण मर गया।

ऐसा हुआ था कि कुछ बीमार एक शेर घर में घुस आया था। उसे देखकर गाय एक तरफ भाग गई। मनुष्य ने उसकी आवाज से गाय के बदले उस शेर को बांध दिया जब उसे शेर के बांधने का ज्ञान हुआ तभी वह मरण को प्राप्त हुआ। शेर को बांधते हुए भी जब तक शेर बांधने का ज्ञान न था तब तक कुछ दुःख न हुआ, ज्ञान होते ही मरण को प्राप्त हुआ।

जो सम्बन्ध वास्तविक नहीं है, उसको वास्तविक मान कर उसका जो ज्ञान है वह ही अज्ञान है। जो जैसा हो उसको वैसा न जानना—और प्रकार जानना अज्ञान है इस-लिये सम्बन्ध का ज्ञान अज्ञान है। जब शरीर में कोई व्याधि होती है तब औषधि सुंघा कर चीर फाड़ की जाती है, औषधि सूंघने से शरीर सम्बन्ध का ज्ञान नहीं रहता इसलिये उस समय दुःख भी नहीं होता। जिसको अज्ञान कहते हैं वह सम्बन्ध का ज्ञान ही है जब सम्बन्ध का ज्ञान नहीं होता और आत्म स्वरूप में देहा-ध्यास निवृत्त हो जाता है तब कोई दुःख नहीं होता।

माने हुए सम्बन्ध का ज्ञान जितना तुच्छ समझा जायगा, अभ्यासियों को उतना ही दुःख कम होगा।

मनुष्यत्व का सार्थक ।

प्राप्त हुए समय का जो सदुपयोग करता है वही मनुष्य है । मनुष्य जन्म का मुख्य कर्तव्य आत्मज्ञान रूप श्रेय (कल्याण) है । समय प्राप्त होने पर जो आलस्य में पड़ा रहता है अथवा अनात्म पदार्थ की आसक्ति (प्रेम) में लगा रहता है वह जीतने पर आई हुई बाजी को हार जाता है । मनुष्य शरीर संसार के भोग मात्र भोगने के लिये उत्पन्न नहीं हुआ है । यदि मात्र भोग भोगने के लिये ही मनुष्य शरीर होता तो पशु पक्षी आदिक अन्य शरीर धारण करके भी भोग हो सकता था । पशुओं से मनुष्यों में विशेष बुद्धि होना अकारण नहीं है। यह विशेष बुद्धि, बुद्धि को शुद्ध करके, बुद्धि से परे निर्विशेष परब्रह्म के जानने के निमित्त है । मनुष्य शरीर में भोग भोगना गौण है और आत्म प्राप्ति मुख्य है । भोग प्रारब्धाधीन है और ज्ञान परम पुरुषार्थ है । भोग स्थूल है और आत्म ज्ञान सूक्ष्म से सूक्ष्म है । शरीर के भौतिक विषय भोग शरीर तक हैं और ज्ञान अनन्त है । भोग तुच्छ है, ज्ञान अमोल्य है । जिसकी जितनी योग्यता है उतना ही उसका मान करना योग्य है इसलिये मनुष्यों को आत्मज्ञान के भाव को छोड़कर, मात्र भौतिक ऐश्वर्य, मान, प्रतिष्ठा, आसक्ति, कामनादिक में लग कर अमूल्य आयुष्य को व्यर्थ न

खोना चाहिये, यदि भोग लालसा में ही आयु गंवा दिया तो मनुष्य में और पशु में क्या अन्तर रहा ! मनुष्य होकर आत्म भाव की तरफ प्रवृत्त न होना इसके समान महान् ब्रह्मांड भर में और कोई भूल ही नहीं है। अज्ञानी मनुष्य भौतिक भोग भी यथार्थ रीति से नहीं भोग सकते, प्रपंच के भोग भी ज्ञानी ही यथार्थ रीति से भोग सकते हैं, भोग के निमित्त भी आत्मज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता है। यदि इस वाक्य के भाव को तुम समझ न सको तो भी वह सत्य है। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् तुम उसका यथार्थ भाव समझ सकोगे।

ज्ञान में जिन विरुद्ध भाव वाले शब्दों का उपयोग किया जाता है वे शब्द बाहर की दृष्टि से अयुक्त दिखाई देते हैं क्योंकि वे ज्ञान जैसे गूढ़ और इन्द्रियातीत विषय को समझाने के लिये कहने पड़ते हैं, इनकी सत्यता और असत्यता का निर्णय विना शुद्ध बुद्धि नहीं हो सकता, ज्ञान हुए पश्चात् उनकी सत्यता स्वयं विदित हो जाती है। भौतिक उन्नति में चित्त का फँसाना ज्ञान में बाधक है। भौतिक उन्नति ज्ञान के पश्चात् ही यथार्थ हो सकती है। प्रपंच की कामनाओं में फँसे हुए मनुष्य यह समझते हैं कि आत्म ज्ञान में प्रवृत्त होने पर भौतिक सुख से हाथ धोना पड़ेगा, वे भौतिक सुख छोड़ना नहीं चाहते इसलिये ज्ञान में प्रवृत्त नहीं होते। इस प्रकार समझना ही अज्ञान

अबुद्धि है। वास्तविक रीति से ज्ञान, भौतिक पदार्थ और भौतिक भोग एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं, समझ में न आने से विरोधी मालूम होते हैं। भोग पदार्थ स्थूल हैं और ज्ञान सूक्ष्म है इसलिये ज्ञान रूप सूक्ष्म भाव को स्थूल भोग नहीं रोक सकते और भोग रूप स्थूल भाव को ज्ञान रूप सूक्ष्म भाव नहीं रोक सकता। स्थूल भोग के साथ में जो विशेष आसक्ति का संस्कार है वह ही ज्ञान में बाधक है, यह समझना तीव्र बुद्धि का विषय है। इससे यही सिद्ध हुआ कि शरीर से भोग होते हुए भी आत्म-ज्ञान प्राप्त हो सकता है, यदि ऐसा न हो तो शरीर का भोग जब तक शरीर है कभी निवृत्त नहीं होगा और बिना शरीर ज्ञान नहीं होगा तो यह महा अनर्थ की प्राप्ति होगी। इससे शरीर रहते हुए, भोग भोगते हुए ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं परन्तु एक बात अवश्य है कि अज्ञानी भोग भोगने के समय अथवा उसके भूत भविष्य में आसक्ति का भाव रखते हैं, उसे हटाने के लिये जब तक विपरीत भावसे काम न लिया जाय तब तक प्रवृत्ति से निवृत्त होने का मार्ग नहीं मिल सकता।

नाशवान् ऐश्वर्य मात्र को प्रेम पूर्वक चाहने वाला यदि उन्नति के शिखर पर पहुंच कर इन्द्र पदवी पर विराजमान हो जाय तो भी वह अज्ञानी प्रपंच का बोझ ढोने वाला, विषय लालसा का कीड़ा ही है। सुअर के भोजन

की कामना वाला यदि देखने में हंस भी हो तो भी सुअर ही है।

मुमुक्षु पुरुषों को नित्यानित्य वस्तु के विवेक से मनुष्य जन्म अवश्य सार्थक करना चाहिये। यदि ऐसा न किया जायगा तो अनेक प्रकार की घटनायुक्त दुःखमय चौरासी लक्ष योनि के चक्र में घूमना पड़ेगा और कष्ट पर कष्ट ही प्राप्त होगा। बुद्धि वाले मनुष्य को शुद्ध और तीव्र बुद्धि के प्रताप से आगे के लिये और इस शरीर में भी यथार्थ सुख जिस प्रकार प्राप्त हो उस प्रकार यत्न करना चाहिये। ज्ञान में स्थिति करने रूप कार्य को महा प्रस्थान कहते हैं, उसी को मनुष्य जन्म का सार्थक कहते हैं।

प्राचीन काल की एक कहानी है, कहानी सच्ची है अथवा झूंठी है इससे अपना कुछ प्रयोजन नहीं है, मात्र दृष्टान्त रूप से समझने का प्रयोजन है। समुद्र में एक टापू था, उसके सामने एक विशाल देश था जो ऊजड़ और वन वाला था, टापू और सामने के देश के बीच में समुद्र था। समुद्र की चौड़ाई लगभग तीन मील थी। जिस प्रकार भारतवर्ष के दक्षिण में रामेश्वर का टापू है इसी प्रकार उस टापू को समझना चाहिये। टापू में वहां ही के राजा का राज्य था। कुछ अंश में उसको प्रजा सत्ताके राज्य के समान कह सकते हैं क्योंकि वहां वंश परम्परा से राजा नहीं होता था। राजा बनाने की व्यवस्था वहां की

प्रजा के पुराने नियम के अनुसार हुआ करती थी। वहां की प्रजा पुरानी जंगली रीति रिवाज वाली थी। हमेशा एक ही राजा राज्य किया करे यह वहां की प्रजा को पसंद न था, इसे वे अनुचित समझते थे। यदि ऐसा हो तो ईश्वर का कोप हो ऐसा वे मानते थे। एक राजा विशेष समय तक रहने से देश की दुर्दशा हो, ऐसा वे समझते थे इसलिये एक राजा को एक साल तक स्वतंत्रता से राज्य करने देते थे। तीन सौ साठ दिन राज्य करने के पश्चात् वे सब मिल कर उसे समुद्र किनारे ले जाया करते थे और वहां से नाव में बैठा कर समुद्र के बीच में पहुंच कर गिरा देते थे—डुबो देते थे, न तो आप निकालते थे और न और किसी को निकालने देते थे। नया राजा इस प्रकार चुना जाता था कि किसी योग्य मनुष्य को उसके मकान पर से पकड़ लाते थे। इस साल इस घर में से राजा बनाया तो दूसरे साल उसके पास के मकानमें से लाकर राजा बनाया जाता, क्रमानुसार ऐसा किया जाता था। जिस प्रकार कई प्राचीन कहानियों में राक्षस को भोजन के लिये एक एक घर से एक एक मनुष्य नित्य पहुँचाया जाता था इसी प्रकार एक साल में एक राजा का यमराज को भोजन दिया जाता था। जो मनुष्य राजा बनाने के लिये पकड़ा जाता था, वह समझता था कि अब मेरा जीवन एक साल तक ही है। राजा बनना

क्या था, मृत्यु के मुख में जाने का एक साल के पश्चात् का निमन्त्रण था ? आज कल राजा बनने में लोग आनन्द मानते हैं, राजा को बहुत सुख होता है ऐसा समझते हैं, उस टापू के रहने वाले इससे उलटा समझते थे ! 'राज के अन्त में नरक' यह कहावत वहां चरितार्थ होती थी ? राजा बनना यमराज की विकाल डाढ़ों में जाना समझा जाता था ! अपनी खुशी से कोई राजा बनना नहीं चाहता था परन्तु समय आने पर अवश्य बनना पड़ता था। इस प्रकार पुराने नियम के अनुसार हजारों मनुष्य राजा बन कर अपने प्राण त्याग चुके थे। जब कभी उस टापू में किसी से आपस में झगड़ा होता और क्रोध में आकर गाली गलौज होती तो 'राजा बन जा' यह कहा करते थे।

एक बुद्धिमान् शूरवीर क्षत्रिय बुद्धिधन नाम वाला और जैसा नाम वैसे गुण वाला कई वर्षों से इस टापू में आकर बस गया था। एक साल उसके घर में से राजा बनने का समय आया। उसके घर भर में सब से चतुर वह ही था। जब राजा बनने का समय आता था तब और लोग तो रोया करते थे परन्तु जब इसके राजा बनने का समय आया तो यह बहुत प्रसन्न हुआ क्योंकि इसे निश्चय था कि बुद्धि की शुद्धता, निश्चलता और तीव्रता से मनुष्य कठिन से कठिन कार्य करने को समर्थ होता है और उसके लिये कुछ असम्भवित नहीं है। "अभी तो राजा बनने में

कुछ दुःख ही नहीं है। आने वाला दुःख एक वर्ष पीछे है। एक वर्ष के पहिले मुझे आने वाले दुःख की खबर पड़ गई है, उसे निवृत्त करने के लिये मैं शुद्ध बुद्धि के सामर्थ्य से प्रयत्न करूंगा और अवश्य आपत्ति से बच जाऊंगा ! इतना ही नहीं परन्तु राजा होने के शुभ अवसर का सदुपयोग करके हमेशा के लिये सुखी बन जाऊंगा। एक वार राजा बना तो हमेशा ही राजा बना रहूंगा !" ऐसा जी में विचार कर वह प्रसन्न था।

मरने को जाना पड़ता है, यह देखकर पुराना राजा रो रहा था और लोग उसे बलात्कार से ले जा रहे थे। बनने वाला नया राजा बुद्धिधन भी साथ में था। पुराने राजा ने समुद्र किनारे पहुंचकर लोगों के कहने से नये राजा को राज्य का काम समझा दिया और राज्य भंडार की चाबियां सौंप दीं। इसके पश्चात् पुराना राजा नाव में बैठाया गया, गहरे जल में नाव ले जाकर खड़ी की गई और अथाह जल में वह गिरा दिया गया। उसके गिरते ही किनारे से तोपों की ध्वनि सहित महाराजा बुद्धिधन की जय बोली गई और उसको राज्य तिलक कर दिया गया। नाव लौट आई। नाव के और किनारे के सब मनुष्यों ने समुद्र में स्नान किया और नये राजा को प्रणाम किया। हाथी, घोड़े, पालकी आदि राज्य चिह्न सहित नये

राजा की सवारी राजधानी में घूमती हुई राजमहल में पहुंच गई।

बुद्धिधन ने राज काज हाथ में लिया और भंडार खोल कर देखा। भंडार देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ वह अपने जी में विचारने लगा "इतने छोटे से राज्य में इतने बड़े खजाने होने का क्या कारण है? ऐसा समझ में आता है कि जो कोई राजा बनता था, उसकी दृष्टि प्रथम मृत्यु पर पड़ती थी परन्तु सामान्य मनुष्य होने से वह भोग विलास में लग जाता था, देशोपकार में कुछ खर्च नहीं कर सकता था, अथवा मृत्यु के डर से जैसे कोई पथिक मार्ग में आई हुई टूटी धर्मशाला में सुख दुःख से रात्रि व्यतीत करना चाहे, इसी प्रकार राज्य को टूटी धर्मशाला समझकर उन राजाओं में से किसी ने हित कार्य नहीं किया! टापू की आमदनी दिन पर दिन बढ़ने से यह खजाना जमा हो गया है।" बुद्धिधन ने लोकोपकारक कार्य करने आरम्भ कर दिये, स्थान स्थान पर तालाब, कुए और धर्मशालाएं बनवाईं, सदाव्रत और अन्न क्षेत्र लगा दिये, खेती सुधारने के अनेक प्रकार के यंत्र बनवाये, खेती करने वालों के कष्ट निवृत्त करने के यत्न किये, जो जो कच्चा माल उस टापू में होता था उसकी उपज अधिक होने का प्रबन्ध किया, कच्चे माल को पक्का माल बनाने के कार्यालय खोले, न्यायालयों में योग्य योग्य न्यायाधीश

नियुक्त किये; जल सैन्य तथा स्थल सैन्य की वृद्धि करके अस्त्र शस्त्रादि सामग्री से युक्त किया, व्यापार वृद्धि के यथा योग्य उपाय किये और अपने लिये भी ऐसी वस्तुएं जो राजा के लिये शोभा देती हैं मंगवाई। उस टापू में एक भारी तालाब था, उसकी कीचड़ निकलवा कर बुद्धि-धन उसमें तैरना सीखने लगा, तैरना सिखाने वाले कई उस्ताद नियुक्त किये गये, डुबकी मारना, डुबकी मार कर चलना, श्वास को देर तक रोके रखना, हाथ पैर हिला कर तैरना, विना हाथ पैर हिलाये तैरना, चित्त होकर तैरना, उल्टे होकर तैरना, खड़े खड़े तैरना, बैठे बैठे तैरना इत्यादि तैरने की विद्या में वह कुशल होने लगा; फिर उसने टापू के सामने समुद्र पार जो वन था उसे वहां के राजा के पास से मोल ले लिया, वहां एक भारी राजमहल बनवाया, उसके आस पास एक शोभायमान बगीचा लगवाया, वन के वृक्ष जो बगीचे के योग्य थे, लगे रहने दिये और महल के चारों तरफ बहुत से मकान बनवा दिये। जितना खजाना बुद्धि-धन को प्राप्त हुआ था उसमें से आधा उसने उस स्थान में लगा दिया। कुछ धन तो महल आदि बनाने में खर्च हो गया और कुछ एक महान् तहखाने में भर दिया गया। शूरवीर सरदारों को भेजकर एक भारी सैन्य भी नियुक्त की गई। इस प्रकार उसने एक वर्ष से प्रथम ही एक महान् राज्य के योग्य व्यवस्था तैयार कर दी। बुद्धिधन का

राज्य बहुत योग्य व्यवस्था से चलता था। प्रजा के हित के कार्य पर बहुत ही लक्ष दिया जाता था, इसलिये सब प्रजा उसके राज्य से प्रसन्न थी और ईश्वर के समान उसको मानती थी। बुद्धिधन एक साल के भीतर ही अपनी आपत्ति निवृत्त करने के लिये जो कुछ उसे करना था, वह सब कर चुका था और पूर्ण प्रसन्नता से रहता था। समय पाकर जब उसका भी एक वर्ष पूर्ण हुआ तब लोग समुद्र में डुबाने के लिये उसे समुद्र के किनारे पर ले गये और साथ में नये बनने वाले राजा को भी ले गये। लोग बुद्धिधन को चाहते थे इसलिये सब रोते थे परन्तु उसके लिये दुःखी होने पर भी वे लोग पुराने आचार के तोड़ने को असमर्थ थे इसलिये चाहते हुए राजा को स्थिर न रख सके।

समुद्र के किनारे आकर नये होने वाले राजा को बुद्धिधन ने राज्य व्यवस्था समझा दी और भंडार की चाबियां देकर कहाः—"मेरे पश्चात् होने वाले राजा! जिस प्रकार मैंने राज्य व्यवस्था चलाई है उसी प्रकार आप भी राज्य करके प्रजा का प्रेम सम्पादन कीजिये, मेरे ही समान आचार करके राजा और प्रजा दोनों सुखी हूजिये, जिस प्रकार मैंने राज्य किया है उसके दिनचर्या का पत्र सबसे बड़े खजाने में रक्खा हुआ है उसके अनुसार राज काज करते रहिये, पूर्व के राजाओं के समान दुःखी होकर

राज काज न कीजिये। आपको जो राज्य प्राप्त हुआ है उसके ऐश्वर्य सम्पन्न समय को सार्थक कीजिये। प्रणाम!"
इसके पश्चात् लोगों ने बुद्धिधन को नाव में बैठा दिया और जब नाव अथाह जल में पहुंची तब उसे समुद्र में गिरा दिया। जल में गिरते ही बुद्धिधन गोता लगा कर किये हुए अभ्यास से जल में ठहरा रहा। किनारे पर तोपों का शब्द हुआ और नाव लौट गई। बुद्धिधन ने जल के भीतर भीतर ही चलना आरम्भ किया, थोड़ी देर में कुछ दूर जाकर मुख पानी के ऊपर निकाला, फिर जल के भीतर भीतर ही चल दिया। किनारे के मनुष्यों का लक्ष नये बने हुए राजा की तरफ था इसलिये बुद्धिधन का किसी ने ध्यान नहीं किया। बुद्धिधन कुछ आगे जाकर जल के भीतर से ऊपर निकल आया और ऊपर ही तैरने लगा, तैरता तैरता दूसरे किनारे पर जा पहुंचा। वहां पर प्रथम से की हुई व्यवस्था के अनुसार बनाये हुए महल से मनुष्य आकर खड़े हुए थे, उन्होंने बुद्धिधन को गरम जल से स्नान कराया, राज्य वस्त्र पहिनाये और वे अपने मालिक को राज महल में ले गये। वहां पर तैयार खड़ी हुई सेना ने राजा को सलामी दी, तोप और बन्दूक छूटीं! इस प्रकार अपने बनाये हुए नये राज्य पद पर बुद्धिधन आरूढ़ हुआ। जिस राजा से जमीन खरीदी गई थी वह और

दूसरे राजा बुद्धिधन को बलिष्ट जानकर उसके आधीन हुए और उसे अपना सम्राट बनाया।

टापू वाले जिस टापू के राजा बनने को नरक समझते थे बुद्धिमान् बुद्धिधन ने उसी टापू का राजा बन कर उसी में स्वर्ग सुख प्राप्त किया। सचमुच! बुद्धिमान् मनुष्य नरक को स्वर्ग में बदल सकते हैं! बुद्धिधन को उसकी चतुराई के कारण मृत्यु के बदले हमेशा के लिये साम्राज्य पद प्राप्त हुआ।

समुद्र संसार है, मृत्युलोक उसमें टापू है। मृत्युलोक में जन्म होना राजा बनना है। मनुष्य की आयु पूर्ण होना—मर जाना, समुद्र में गिरना है। प्रपंचासक्त बुद्धि वाले मनुष्य, मनुष्य रूप राजा बन कर भी संसार समुद्र में डूबते हैं। दैवी संपत्ति वाले कर्तव्याकर्तव्य के विवेक वाले शुद्ध संस्कारी मुमुक्षु रूप बुद्धिधन जैसे, अनात्म भावना के साथ युद्ध करके जय प्राप्त करने वालों को समुद्र में गिर कर मरण प्राप्त नहीं होता क्योंकि वे समुद्र में गिरने से प्रथम ही उसमें से तैर कर निकल जाने का अभ्यास कर लेते हैं और मनुष्य जन्म रूप राज्य के प्राप्त हुए भंडार का सदुपयोग करके अपने लिये महान् राज्य को तैयार करते हैं! वे ब्रह्मलोक अथवा ब्रह्म को प्राप्त होते हैं और इसके सिवाय मनुष्य शरीर में भी चिन्ता रहित जीवन्मुक्त राज्य को भोगते हैं इस प्रकार यत्न करने वाला

मुमुक्षु है, उपासक है, भक्त है। वही कल्याण को प्राप्त होता है!

शास्त्रों में चौरासी लाख योनि बताई हैं, उन सब योनियों में मनुष्य श्रेष्ठ है। चौरासी लाख योनियों में यद्यपि ऊंच नीच सभी प्रकार की योनियां हैं परन्तु मनुष्य जन्म ही राज योनि है। देवता मनुष्य से श्रेष्ठ समझे जाते हैं! उनके भोग मनुष्यों के भोग से विशेष ऐश्वर्य वाले होते हैं तो भी वे मोक्ष के अधिकारी नहीं समझे जाते। देवताओं के अत्यन्त शुभ कर्मों का भोग दिव्य शक्तियां हैं जो मोक्ष की प्रतिबन्धक हैं इसलिये मनुष्य के समान राज योनि देवताओं की नहीं है। कई स्थानों में ऐसा लेख भी मिलता है कि मोक्ष के निमित्त देवता भी मनुष्य शरीर धारण करने की इच्छा करते हैं। मनुष्य जन्म होना बहुत ही विलक्षण बात है! जब पाप पुण्य की समानता होती है तब मनुष्य जन्म होता है। पाप पुण्य के न्यूनाधिक प्रमाण से मनुष्य जन्म प्राप्त नहीं होता। किंचित् पुण्य की विशेषता से गंधर्व, विद्याधर, किन्नर आदि क्षुद्र देवता होना पड़ता है और किंचित् पाप की अधिकता से कुत्ता, गाय, भैंस आदिक तिर्यक् योनि प्राप्त होती है। मनुष्यों में पाप पुण्य की न्यूनाधिकता मनुष्य जन्म का अन्तर भेद है। अतएव इस प्रकार मनुष्य जन्म के योग्य पाप पुण्य की समानता संयोग वश अनायास होती है

इसीसे मनुष्य जन्म दुर्लभ है, दुर्लभता ही राजापना है। सब जानते हैं कि शरीर का नाश होता है, कोई भी स्थूल शरीर आज तक नहीं रहा; इससे सिद्ध है कि आगे भी कोई शरीर नहीं रहेगा, मरना अवश्य पड़ेगा तो भी ऊपर के दृष्टान्त के राजाओं की समान जो कुछ इस समय के निमित्त और आगे के लिये करना चाहिये वह नहीं करते और संसार समुद्र में गोता खाते ही रहते हैं। ऊपर के दृष्टान्त में राजा को बलात्कार से समुद्र में गिराने वाली राजा की ही प्रजा थी। इस प्रकार मनुष्य रूप राजा की प्रजा प्रपंचासक्ति और अज्ञान से लेकर काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि जो आसुरी सम्पत्ति हैं वे ही मनुष्य को डुबो देती हैं। समुद्र में जिस प्रकार कच्छ मच्छ आदि प्राणी होते हैं इसी प्रकार संसार में अनेक आपत्तियां हैं। जिस प्रकार समुद्र में जल की थाह नहीं है इसी प्रकार संसार में कामना, आसक्ति की भी थाह नहीं है। जब कोई सत्पुरुष प्रपंच के चक्र में फँसे हुए मनुष्यों को ईश्वर भक्ति, ज्ञान, उपासना के लिये समझाता है तब वे लोग कह देते हैं "हमसे क्या हो सकता है? प्रथम तो मार्ग अत्यन्त ही विकट! फिर मनुष्य की आयु कितनी! भक्ति, ज्ञान किस प्रकार प्राप्त कर सकें? अनेक प्रकार की चिन्ताएँ लग रही हैं! विना चिन्ता छूटे भजन किस प्रकार हो? गीता में भगवान् ने भी कहा है 'अनेक जन्म संसिद्धिः' फिर भला एक

जन्म में ज्ञान की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?" इस प्रकार कह कर अपने दुर्गंध वाले झगड़ों में फंसे रहते हैं। ऐसे लोगों का वही हाल होता है जो अनेक राजाओं का हुआ था !

कोई पुरुषार्थी वीर पुरुष बुद्धिधन के समान मनुष्य जन्म किस प्रकार सार्थक हो, संसार समुद्र में से निकल कर परम पद-आद्य स्वरूप किस प्रकार प्राप्त हो, इस बात का विचार कर पूर्ण पराक्रम से यत्न करता है, विवेक वैराग्य से काम लेता है, सद्गुरु की शरण ग्रहण करके संसार समुद्र में से तैर जाना सीखता है। शास्त्रानुसार सत् कर्म से स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त होता है। अविद्या से मृत्यु को तैर कर विद्या से अमृत को प्राप्त होता है। ऐसा न करके जो लोग पशु पक्षी के समान मात्र भोग में अपनी सब आयु खो देते हैं वे पशुओं से भी हीन हैं, पशु तो बहुत अंश में उनसे अच्छे हैं। मनुष्य जन्म धारण करके अपने अंतिम लक्ष्य आद्य स्वरूप को जो शूरता से प्राप्त कर लेते हैं वे पुरुष धन्य हैं ! वे ही परम पूज्य परमात्मा स्वरूप हैं ! वे ही कर्ता होकर भी अकर्ता हैं ! वे ही अखंडित अबाधित, प्रकाशने वाले प्रचंड व्यापक सूर्य हैं ! वे ही वेद्य वेदान्त हैं !

वेदान्त रहस्य ।

वेदान्त क्या वस्तु है, उसका क्या रहस्य है, यह न जान कर सामान्य मनुष्य उसे और मजहबों के समान एक मजहब समझते हैं। अथवा जगत् को बहकाने वाला,

आलसी बनाने वाला एक मार्ग मानते हैं। वेदान्त रहस्य संसार के भावों में अत्यन्त लिप्त मनुष्यों की समझ में नहीं आ सकता इसलिये न समझे हुए को समझा हुआ मान कर और अपनी रुचि के अनुसार वेदान्त की निंदा करते हैं यानी झूंठा ठहराते हैं अथवा अनुपयोगी समझ कर उसके त्यागने का स्वयं भाव करते हैं और वेदान्त की रुचि वाला जो कोई दूसरा होता है, उसे भी उस मार्ग में जाने से रोकते हैं। इस प्रकार करने से वे अपनी तुच्छ बुद्धि का परिचय देते हैं। सब व्यवहारिक मनुष्य अपने अपने माने हुए को, जिस पर उनकी श्रद्धा है, सच्चा और फलदाता समझते हैं और दूसरे का विचार चाहे कितना ही अच्छा हो, उसे बुरा ही कहते हैं। विचार करने से विदित होगा कि सामान्यता से प्रत्येक मनुष्य इसी प्रकार वर्तता है— जगत् का प्रवाह इसी प्रकार है। जिसने कुछ और मान रक्खा है, यदि उसे वेदान्त विपरीत मालूम हो और वह उसकी निंदा करे, तो जगत् प्रवाह के अनुसार यह ठीक ही है। इस प्रकार के प्रवाह का क्या कारण है ? इसका कारण वेदान्त का अज्ञान है क्योंकि वेदान्त तत्त्व के अज्ञान से ही सब संसार भरा हुआ है। यदि संसारी मनुष्य वेदान्त रहस्य को स्वीकार कर ले तो उसका संसार ही न रहे, उसकी परम प्रिय गृहस्थी की निवृत्ति होजाय। वेदान्त तत्त्व से अज्ञात बने रहने में ही संसारी का संसार—जीवन

है इसलिये संसारासक्त मनुष्य वेदान्त रहस्य समझना नहीं चाहते।

सच्चा भेद इसका यह है कि लोग जिस तत्त्व से वेदान्त को और अन्य मजहबों को अयुक्त—झूंठा कहते हैं, वह ही वेदान्त रहस्य है अर्थात् वेदान्त रहस्य का आश्रय लेकर ही अपने सिवाय अन्य मजहबों को और वेदान्त को झूंठा ठहराते हैं। अन्य सबको झूंठा ठहराता हुआ भी अपने को कोई झूंठा नहीं कहता। अपना किस प्रकार झूंठा हो सकता है ? वह तो हमेशा सच्चा ही है, झूंठा तो दूसरा ही होता है, भला ! अपने को कौन झूंठा कर सकता है ? अपना प्रेम सब प्रकार के प्रेम से विशेष है, कोई एक ही ऐसे एक के ऊपर प्रेम करता है ! जिसके प्रेम की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये अन्य को झूंठा—तुच्छ ठहराते हैं, वह आत्म तत्त्व है और वह ही वेदान्त रहस्य है। जिस प्रकार लोग आत्मा—अपने को न जान कर दूसरे को तुच्छ बता कर आत्मा की श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं इसी प्रकार वेदान्त को न जान कर, वेदान्त शब्दों को तुच्छ बताकर वेदान्त रहस्य की श्रेष्ठता का परिचय देते हैं। आत्मा और वेदान्त तत्त्व भिन्न २ नहीं हैं, वे दोनों कभी भिन्न नहीं होते, जो उनको भिन्न बतावे, वह वेदान्त नहीं है। अभिन्न को भिन्न समझने का कारण अज्ञान है। आत्मा और वेदान्त रहस्य पर्यायवाचक हैं। आत्मा, साक्षी, वेदान्त रहस्य, परमात्मा आदिक सब नाम

हैं। वेदान्त में नाम रूप की कुछ महिमा नहीं है किन्तु जिसमें नाम रूप कल्पित हैं उसकी महिमा है। सामान्य मनुष्य आत्म शब्द करके यथार्थ आत्मा को नहीं जानते, इसी प्रकार वेदान्त शब्द करके वेदान्त रहस्य को नहीं समझते, ऐसी अवस्था में उनका कथन अन्धे के समान समझना चाहिये।

वेदान्त प्रतिपादन करने वाली श्रुतियां वेदान्त—आत्मा कह कर—समझा कर स्वयं अपना घात करती हैं। श्रुति सब कुछ समझाकर कहती है कि मैंने तुमको शब्द से जो कुछ समझाया है, उसे समझ गये होगे। समझाने के निमित्त जिन शब्दों का मैंने कथन किया है, वे ब्रह्म नहीं हैं। मेरे समझाने के शब्द तत्त्व स्थिति के बाद व्यर्थ हैं। शब्द पकडने से तुमको स्वरूप का बोध नहीं होगा। शब्द लक्ष पहुंचाने के निमित्त कहा गया था। जिस हेतु से शब्द कहा गया था उस हेतु को सिद्ध करके शब्द—नाम को छोड देना चाहिये क्योंकि नाम रूप मिथ्या हैं। अज्ञानी वेदान्त को न जानने के कारण झूंठा कहते हैं। श्रुति वेदान्त तत्त्व को समझाने के बाद, जिन वचनों से समझाया है उन वचनों को मिथ्या करती है और समझाये हुए तत्त्व को उन वचनों से परे बताती है। जिन ज्ञानियों की दृष्टि में तीन काल में भी नाम रूप की सत्यता नहीं है, उन्हीं को वेदान्त तत्त्व का बोध होता है। अलौकिक

वेदान्त को बोध अबोध, सत्य असत्य, निंदा स्तुति सब समान हैं। उसकी जितनी निंदा की जाती है, उतनी ही उसकी सिद्धि होती है। अपने वाक्य काटने में ही श्रुति का गौरव हैं। इसी कारण सब शास्त्रों से उसकी विशेषता है।

एक साधु साधु के बाहर के सब चिह्नों से रहित था। लोगों में उसके उपदेश की प्रशंसा बहुत थी। कई समृद्धिवान् और विद्वान् पुरुष भी उससे उपदेश लेकर शिष्य बन गये थे। जिस ग्राम में वह रहता था, वह एक छोटा सा ग्राम था। उसके समीप दो कोस पर एक भारी शहर था; उस शहर के एक श्रीमान् वैश्य को उसके पूर्व जन्मों के शुभ कर्मों के प्रताप से उपदेश लेने की इच्छा हुई। उसने पास के ग्राम में रहने वाले साधु की प्रसिद्धि सुन रखी थी इसलिये उसने उससे ही उपदेश लेने का निश्चय किया। गुरु के पास जाकर उपदेश लेने का शुभ दिन और मुहूर्त पंडितों से निश्चित करके वह एक दिन शुभ मुहूर्त में दो घोडों की बग्घी में बैठकर साधु के पास जाने को तैयार हुआ। बग्घी मकान के बाहर खडी हुई थी और बहुत से चलते फिरते मनुष्य गाडी के पास देखने के लिये खडे हो गये थे। ज्यों ही साहूकार मकान में से निकल कर गाडी में बैठने को जाने लगा त्यों ही उसे एक मनुष्य सामने से आता हुआ दिखाई दिया। वह मनुष्य फटे पुराने और

मलिन वस्त्र धारण किये था और उसका शरीर भी मलिन था। ऐसे कंगाल मनुष्य को सामने आया हुआ देखकर साहूकार बहुत क्रोधित होकर बोला "मैं शुभ मुहूर्त में साधु के पास दीक्षा लेने जारहा हूं, यह अपशकुन करने वाला दुष्ट कहां से आ मरा !" कंगाल धीरे २ निशंकता से साहूकार के निकट आ रहा था। साहूकार को उसकी इस प्रकार की चाल और भी बुरी मालूम हुई। उसे विशेष क्रोध आया और उसने पैर में से जूता उतार कर कंगाल के शिर में पांच चार जूते मार दिये। कंगाल कुछ न बोला और हँसता हुआ जिस चाल से चल रहा था उसी चाल से धीरे धीरे चला गया। साहूकार बग्घी में बैठ गया और बग्घी चल दी। खडे हुए मनुष्यों में से एक को दया आई, वह कहने लगा "सेठजी साधु के पास शिष्य होने जा रहे हैं, बीच में बिचारा कंगाल मिल गया, अपशकुन समझ कर सेठजी का मिजाज बिगड़ गया, कंगाल को प्रसादी मिल गई !"

यह कंगाल वह ही साधु था जिसके पास साहूकार दीक्षा लेने जा रहा था। जब साधु को यह मालूम हुआ कि साहूकार मेरे स्थान पर जाता है तो साहूकार को मेरे लिये अधिक ठहरना न पड़े यह सोचकर वह जल्दी से अपने स्थान को लौट दिया। साहूकार महात्मा के स्थान पर पहुँचा और वहां पहुँच कर उसे खबर मिली कि महात्मा

यहां नहीं हैं, बाहर गये हुए हैं, थोड़ी देर में आ जायंगे। महात्मा के एक शिष्य ने एक चटाई लाकर बिछा दी। सेठ उस पर बैठ गया और विचारने लगा "कैसा अपशकुन हुआ है! अपशकुन का फल प्रत्यक्ष है! महात्माजी से भेट न हुई!" इस प्रकार विचारता हुआ साहूकार कंगाल को दो चार गालियों का शिरोपा दे रहा था इतने में वह ही कंगाल आता हुआ दिखाई दिया। साहूकार फिर उस पर क्रोध करना चाहता था कि इतने ही में जिस शिष्य ने चटाई बिछाई थी, उसने जल्दी से जाकर कंगाल को प्रणाम किया। उसे प्रणाम करता हुआ देखकर सेठ आश्चर्य करने लगा। अन्त में जब उसे मालूम हुआ कि यह वही महात्मा है, जिसके पास मैं उपदेश लेने आया हूँ तब तो वह अपने मनमें बहुत ही लज्जित होने लगा। जब साधु आकर आसन पर बैठ गया तो सेठ ने शिर नीचा करके करुणा की चाहना करता हो इस प्रकार के भाव से महात्मा को प्रणाम किया और रुदन करते हुए कहा "हाय! मैं दुष्ट हूँ! महा पापी हूं! अनजानपने में मैंने बड़ा अपराध किया है! धन के मद से उन्मत्त हुए मैंने आपके जूते मारे! मेरे समान हीन कर्मी इस जगत् में कौन होगा! हाय! इस अपराध की क्षमा मुझे कैसे मिलेगी!" साधु आश्वासन देता हुआ बोला "तूने कोई भी अपराध नहीं किया है! कुछ अनुचित नहीं किया! अनजान और अंधा बराबर होते

हैं ! तूने अनजानपने से मुझमें जूते मारे हैं, यह ठीक ही है ! यदि तू जानता तो ऐसा बर्त्ताव न करता ! तू गुरु खरीदने को निकला था, जब कोई एक पैसे की हांडी खरीदने जाता है तो हांडी में ठोकरें मारकर—हांडी को बजा कर पक्की अथवा कच्ची का निर्णय करता है, यदि पक्की देखता है तो खरीद लेता है । तूने गुरु को मोल लेने में यदि जूतों की ठोकरों से गुरु को पहिचान लिया. तो इसमें तूने क्या अनुचित किया ? तूने जूते मार कर पहिचान लिया होगा कि गुरु बोदा नहीं है ! क्योंकि विकार को प्राप्त न हुआ ! कंगाल शरीर जूते खाने के ही योग्य है ! जिस स्थूल शरीर पर तू ममता बांध रहा है, वह शरीर ही कंगाल है ! पंचभौतिक तीनों शरीर ही कंगाल हैं ! अनेक स्थान से वारंवार टूटते हैं, न्यूनाधिक होते हैं । इस स्थूल शरीर का कब नाश होगा; यह भी निश्चित नहीं है ! ऐसे तुच्छ के जूते ही मारना चाहिये ! और आत्मा को जानकर देहाध्यास की निवृत्ति करना चाहिये । जो देह की पूजा करता है—उसको ही मैं और मेरा मानता है वह वारंवार जन्म मरण के चक्र में अनेक विपत्तियों सहित घूमा करता है और जो माया सहित मायिक शरीर की पूजा नहीं करता किंतु आत्म तत्त्व में स्थित रहता है, उसी को परमानंद प्राप्त होता है । शरीर के विकारों से विकार को प्राप्त न होना, यह ज्ञानी का

लक्षण है ! तू निर्भय हो, तूने कुछ भी अयुक्त नहीं किया है ! मैं भी तुझे तेरे शरीराध्यास को जूते मारने का ही उपदेश देता हूं। अनजान से भी मेरी परीक्षा करके तूने मुझे ग्रहण किया है इसलिये तू मेरा परम शिष्य है ! महात्माजी के वचन के अनुसार वह साहूकार परम त्यागी-परम ज्ञानी हुआ ! जो लौकिक साहूकार था वह अलौकिक पारमार्थिक साहूकार बना ! कई लोगों का कहना है कि यह साहूकार दादूजी का शिष्य सुन्दरदास था, जिसका अनुभव ग्रन्थ सुन्दर विलास आज भी अनेक मनुष्यों को आत्म तत्त्व रूप श्रीमानूता को प्राप्त कराता है !

जिस प्रकार अज्ञान से अपमान होने में और जूते खाने में महात्मा की प्रशंसा ही रही इसी प्रकार वेदान्त रहस्य की निंदा होने में भी प्रशंसा ही है। पूजा और अपमान में जो विकार को प्राप्त नहीं होते, ऐसे ही महात्मा समान तत्त्व में स्थित रहते हैं। जिस बोध से ऐसी स्थिति प्राप्त होती है वह बोधस्वरूप वेदान्त रहस्य हमेशा सम भाव में ही है, उसकी निन्दा स्तुति कुछ भी नहीं होती। वेदान्त की स्तुति भी स्तुति है और निन्दा भी स्तुति है। जैसे जब जूते खाये तब महात्मा का महात्मापना नहीं गया इसी प्रकार वेदान्त रहस्य की निन्दा होने पर भी वेदान्त रहस्य की महत्वता चली नहीं जाती किन्तु अपने प्रकाश से प्रकाशित ही रहता है।

जहां एक ही वस्तु है, अपना ही है, अपने सिवाय और कोई नहीं है, वहां निंदा किसकी ! तो भी जो निंदा करते हैं वे अपने स्वरूप को न जानकर ही करते हैं। जैसे कोई मनुष्य किसी भ्रम के कारण अपने ही हाथ को सर्प जानकर डरने लगे, लाठी से मारने का उद्यम करे, इसी प्रकार यह भी है। सब जगत्, सब प्राणियों और सब वस्तुओं का जो आद्य विकार रहित तत्त्व है, वह वेदान्त रहस्य यानी आत्मा है। व्यक्ति भाव में भी उसीसे सबका निर्वाह होता है। वह तत्त्व सब ब्रह्मांड और सब मजहबों से अतीत है। उस वेदान्त को मजहब कहने वाले भूल करते हैं। वह तत्त्व ब्रह्मांड भर का एक ही है और सबका अपना मूल तत्त्व है। जिस प्रकार छोटी बड़ी नदियां तथा भिन्न भिन्न प्रकार के जलों का मूल स्थान एक समुद्र ही है इसी प्रकार सबका मूल आत्मा ही है। जैसे व्यक्ति भाव में अंग उपांग से अपना विरोध नहीं है इसी प्रकार अधिष्ठान में जो जो अध्यस्त है, उससे अधिष्ठान का विरोध नहीं है। यदि अधिष्ठान का अध्यस्त से विरोध हो तो अध्यस्त की प्रतीति ही न हो। जब तक अध्यस्त की प्रतीति होती है तब तक ही समझना चाहिये कि अधिष्ठान का अध्यस्त से विरोध नहीं है, अधिष्ठान के ज्ञान से अध्यस्त की निवृत्ति होजाती है। सामान्य अधिष्ठान ज्ञान से अध्यस्त का विरोध नहीं है किंतु विशेष अधिष्ठान ज्ञान

से विरोध है। सामान्य, सत्य, अबाधित अधिष्ठान का किसी से विरोध नहीं है। कोई कोई अद्वैत कथन करने वाले द्वैत कथन करने वालों से और द्वैत कथन करने वाले अद्वैत कथन करने वालों से झगड़ते हैं। ये दोनों ही कुछ भी नहीं जानते। अद्वैत में स्थिति न होते हुए अद्वैत कथन करना द्वैत ही है। अद्वैत में कोई झगड़ा नहीं है, जितना झगड़ा है द्वैत में ही है। झगड़ना दूसरे से होता है, जहां दूसरा नहीं वहां झगड़ा नहीं! अद्वैत शब्द भी द्वैत भाव से हटाने के लिये है, वास्तविक वेदान्त तत्त्व तो द्वैत और अद्वैत दोनों से विलक्षण, दोनों से अतीत और दोनों का प्रकाशक है। वेदान्त रहस्य का द्वैत अथवा अद्वैत किसी से द्वेष नहीं है। द्वैत में वह द्वैत को स्वीकार करता है और द्वैत के हटाने के समय अद्वैत को मानता है। ऐसा होते हुए भी वह तत्त्व सबका आधार–अधिष्ठान होने से विलक्षण ही है, जो बोध से जाना जाता है।

जो कोई किसी का बोध करता है वह बुद्धि से करता है। बुद्धि मायिक और विकारी है इसलिये बुद्धि की सामर्थ्य मायिक और विकारी पदार्थों के बोध करने में ही है! वह अविकारी चेतन तत्त्व वेदान्त रहस्य के जानने में असमर्थ है। अन्य को प्रकाश करने वाला व्यक्ति अन्य व्यक्ति को ही प्रकाशित कर सकता है। व्यक्ति में जिसका प्रकाश आया हुआ है, वह परब्रह्म है। उस परब्रह्म को

प्रकाशने की सामर्थ्य व्यक्ति भाव के पदार्थ में नहीं होती। यह नियम है कि व्यक्ति व्यक्ति को ही प्रकाशती है, अखंड को नहीं प्रकाशती। अखंड ऐसा जो आत्मा है वह स्वयं प्रकाश है, वह अपने को और व्यक्ति भाव के सब मायिक पदार्थों को साक्षी रूप से प्रकाश करने की सामर्थ्य वाला है, वह ही सबका आदि अंतिम तत्त्व है और मध्य में भी वही है। उस तत्त्व के अज्ञान से जो विचित्रता मध्य में दीखती है वह विचित्रता संसारिक भिन्नता और संसरण रूप संसार है। संसार आत्म तत्त्व की अपेक्षा तुच्छ है ! जो जिसका आदि और अन्त होता है वह ही उसका मध्य होता है इससे सिद्ध है कि मध्य में जो भिन्नता प्रतीत होती है वह काल्पनिक और भ्रमात्मक है।

स्थूल पदार्थों का बोध करने की शक्ति बुद्धि में अन्न और रस से आती है। जैसा जिसका भोजन होता है, वैसी ही उसकी बुद्धि होती है। गधे के आहार अनुसार गधे की और घोड़े के आहार अनुसार घोड़े की बुद्धि होती है। जब स्थूल शरीर को कुछ दिनों तक भोजन नहीं मिलता तो बुद्धि क्षीण हो जाती है। इस अवस्था में पढ़ा हुआ अपढ़ हो जाता है और कहता भी है कि 'मेरी बुद्धि काम नहीं देती, मुझको याद नहीं है' इससे सिद्ध होता है कि भौतिक आहार से पुष्ट हुई बुद्धि भौतिक पदार्थों का बोध करने की सामर्थ्य वाली है। सब शास्त्रों का उपदेश भी

स्थूल है, जो बुद्धि द्वारा ग्रहण होता है। वेदों में गुप्त रहा हुआ, बुद्धि का अविषय ऐसा जो आत्म तत्त्व है जो वेदों का अन्तिम सारांश है वह वेदान्त है। वेदान्त, वेदान्त का ज्ञाता और निर्माता आत्मा ही है। सूक्ष्म आत्मभाव वाली बुद्धि सूक्ष्म से सूक्ष्म भी प्रपंच की हद तक ही काम में आ सकती है, आत्मा के सन्मुख जाते ही इसका लय हो जाता है। आत्मा के सामने बुद्धि भिन्न भाव से टिक ही नहीं सकती तब आत्मा का बोध किस प्रकार करे। आत्मा सूक्ष्म संस्कार वाली बुद्धि से जाना जाता है ऐसा जहां कहा है वहां सूक्ष्मता में लाने के निमित्त मुमुक्षुओं को मोक्ष मार्ग में प्रवृत्त करने के निमित्त है। बुद्धि से जाना हुआ आत्म तत्त्व यथार्थ नहीं होता। जहां आत्मा का ही बोध हुआ है वहां बुद्धि न होना चाहिये। बुद्धि व्यक्ति भाव से है इसलिये वह बोध ठीक नहीं है, तुच्छ है। शुद्ध आत्मा बुद्धिगम्य नहीं है, आत्म बोध के पश्चात् बुद्धि ग्रहण करके कृतार्थ होती है।

एक समय राजा विक्रमादित्य सभा में बैठा हुआ था। एक द्वारपाल ने आकर कहा "महाराज! सामुद्रिक शास्त्र का जानने वाला एक विद्वान् आपके दर्शन करने की इच्छा से आया है।" राजा की आज्ञा से सामुद्रिक विद्वान् सन्मान सहित सभा में लाया गया। राजा ने

पंडित को नमस्कार किया और सत्कार पूर्वक आसन पर बैठाया। पंडित आसन पर बैठकर एकाग्र चित्त से लक्ष पूर्वक राजा के शरीर को देखने लगा। राजा के शिर, हस्त, पैर, ललाटादिक को उसने बहुत सूक्ष्मता से देखा। इस प्रकार बड़ी देर तक उसने स्थिर दृष्टि से राजा के शरीर का अवलोकन करके अप्रसन्न वदन से गरदन घुमा कर मन के भाव को प्रकट किया। उसकी आकृति और चेष्टा से वह दुःखी हुआ मालूम होता था। राजा ने यह देखकर उससे दुःखी होने का कारण पूछा। पंडित ने नम्रता पूर्वक कहा "महाराज जो कुछ मैं कहूं, उसकी मुझको क्षमा देना, आप दुःखी होने का कारण पूछते हैं मेरी इच्छा नहीं है तो भी कहे विना काम नहीं चलेगा ऐसा समझ कर कहता हूं कि इतनी देर तक मैंने आपके शरीर को पूर्ण लक्ष से देखा परंतु उसमें मुझको एक भी सामुद्रिक उत्तम लक्षण दिखाई नहीं दिया। मुझे आशा थी कि आप में राज्य चिह्न के कोई उत्तम लक्षण अवश्य होंगे परन्तु ऐसा कोई चिह्न न देख कर मैं निराश हुआ हूं। महाराज! सामुद्रिक चिह्न देखते हुए तो आपको कुलक्षणों का निधि ही कहना चाहिये परन्तु चमत्कार यह है कि आप कुलक्षणों के निधि न होते हुए छयानवे राज्यों के सार्वभौम महाराजा हैं। साम्राज्य लक्ष्मी ने आपको वरमाला अर्पण की हुई देख कर मुझको इस

सामुद्रिक शास्त्र पर तिरस्कार हुआ है, मेरे चित्त से उसकी सत्यता जाती रही है। मुझे ऐसा दीखता है कि इस शास्त्र में अर्थ नहीं है, आपको देखने से शास्त्र झूंठा ठहरता है। शास्त्र का सच्चापना किस प्रकार हो, बड़ा चमत्कार है! शास्त्र के अनुसार आप दरिद्रता के सार्वभौम होने चाहिये थे परन्तु यहां तो विरुद्ध अनुभव होता है। अपने शास्त्र ज्ञान के विषय में जो मैं कहता हूं वह झूंठा नहीं है, मेरा शास्त्र सच्चा है। यह बात मैं यथार्थ जानता हूँ, मैंने इसकी हजारों मनुष्यों पर परीक्षा ली है, यदि आप कहें तो आपको दिखला सकता हूँ। इस विपरीत प्रकार से मुझे ऐसा भासता है कि आपके उदर में कोई विशेष चिह्न अवश्य होगा कि जिसके प्रभाव से आप ऐसे कुलक्षण युक्त दीखते हुए भी सार्वभौम राज्यकर्ता हैं।"

पंडित के इस प्रकार के वचन सुनकर राजा को हँसी आई। वह तुरन्त ही हाथ में तलवार ले, म्यान में से निकाल कर अपना पेट चीरने को तैयार हुआ। यह देखकर पंडित डर गया और बोला "हैं! हैं! महाराज! यह आप क्या करते हैं! ऐसा न कीजिये।" राजा बोला "पंडितजी! इसमें क्या हानि है? जब तुमको बाहर के चिह्नों से मैं अयोग्य मालूम होता हूँ और सामुद्रिक शास्त्र पर तुम्हारी अश्रद्धा होती है, उसको दूर करने के लिये, जिसको तुम नहीं जान सकते—नहीं देख सकते, उस भीतर

के लक्षण को दिखाने के निमित्त तुमको निश्चय कराने के निमित्त ही मैं पेट को चीर कर दिखलाता हूं।" ऐसा सुन कर पंडित बोला "नहीं! नहीं! मैं समझ गया। पेट चीरने से प्रथम ही वह लक्षण मुझे दीख गया! सामुद्रिक शास्त्र में जो बत्तीस लक्षण कहे हैं, उनसे यह लक्षण भिन्न ही है! वह आपका सत्य पराक्रम है! देह के ऊपर आपकी अनासक्ति है, यह बात आपके पेट चीरने के प्रयत्न से मुझे मालूम हो गई! अब पेट चीरने का कुछ प्रयोजन नहीं है! जिस प्रयोजन के निमित्त आप पेट चीरते थे वह सिद्ध हो गया। यह सत्व तेतीसवां लक्षण है, जो सामुद्रिक शास्त्र में नहीं है। जिसमें यह लक्षण होता है वह एक पृथिवी का क्या, तीनों लोकों का भी सार्वभौम होने के योग्य है!" यह कहकर पंडित बहुत प्रसन्न हुआ। विक्रमादित्य ने उसका सत्कार कर उसको विदा किया।

जिस प्रकार सामुद्रिक शास्त्र में बताये हुए सब लक्षण स्थूल थे और उनसे विलक्षण प्रकार के लक्षण युक्त सार्वभौम था, वह लक्षण सामुद्रिक शास्त्र में लिखा नहीं गया था क्योंकि वह उस शास्त्र के लिखने का विषय नहीं है, मात्र स्थूल चिह्न ही उस शास्त्र के लिखने का विषय है; इसी प्रकार बाहर के जितने लक्षण बुद्धिगम्य हैं वे ही शास्त्र में हैं। उनसे विलक्षण आत्मा का स्वरूप है, वह बुद्धि रूप—संसार रूप वेद शास्त्र का विषय नहीं है इसलिये

सामुद्रिक शास्त्र के पढ़े हुए पंडित के समान वेद पढ़े हुए पंडितों का वह विषय नहीं है किन्तु अलौकिक है, उसके लक्षण भी अलौकिक हैं। वह आंतरिक और अत्यन्त सूक्ष्म है। यदि किसी व्यवहारिक मनुष्य को आत्मा के चिह्न दिखाये जांय तो वह उसका अनुमान ही कर सकता है, प्रत्यक्ष नहीं कर सकता। आत्मा अपना ज्ञाता आप ही होता है।

विक्रम पराक्रम वाला आत्मा है। बाहर के लौकिक लक्षणों से वह जाना नहीं जाता। उन लक्षणों से तो वह कंगाल जीव ही समझा जाता है। कंगाल इस कारण से है कि वह अनेक पदार्थों की इच्छा—कामना—याचना किया करता है परन्तु वास्तविक तो वह त्रैलोक्याधिपति, सार्व-भौम है। जब वह आंतरिक चिह्नों को प्रगट करता है, तब सार्वभौमता का निश्चय होता है। लौकिक शास्त्र सामुद्रिक शास्त्र के समान हैं, बुद्धि का विषय है और बाहर के मायिक सामर्थ्य के लक्षण दिखलाते हैं। जो उनके ऊपर निर्भय रह कर निर्णय करते हैं वे सामुद्रिक पंडित के समान व्यामोह में पड़ते हैं। वेद, वेदान्त के कथन को ही पकड़ने वाले को व्यापक तत्त्व का बोध नहीं हो सकता। उनको स्वस्वरूप की प्राप्ति रूप सार्वभौम का अनुभव नहीं होता किन्तु वे जीव भावरूप कंगालियत में ही अनेक जन्म, दुःख और कष्ट भोगते हैं और 'हाय' के साथ अपना जीवन

व्यतीत किया करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि वेदान्त रहस्य बुद्धिगम्य नहीं है। उपदेश किया हुआ भी उपदेश से विलक्षण स्वलक्ष स्वरूप है।

वेदान्त रहस्य रूप आत्मा सबका अपना आप है। उसका कौन सा मजहब है? सभी मजहब उसके ही हैं! मजहबों में भिन्नता है। सब मजहबों में रहकर भी जो भिन्नता रहित है, वह वेदान्त रहस्य है। वह सब में है, सब से बाहर भी है और सब के बाहर भीतर से रहित है। इस प्रकार का वह विलक्षण है। उसके देखने का जगत् में कोई साधन नहीं है। जितने साधन उसके देखने के हैं वे सब भूल है। किसी संस्कारी को ही साधन द्वारा साधन छोड़कर बोध होना संभव है। जो भूल में पड़ा हुआ है, वह अपनी भूल को किसी साधन द्वारा नहीं निकाल सकता यदि वह आप ही भूल को निकाले तो निकल सकती है। वेदान्त रहस्य ही ईश्वर है, वह ही अनीश्वरवादी का अनीश्वर है और शून्यवादी का शून्य है। जो जिस भाव से, जिस रूप से, जैसा मानता है उन सब की सिद्धि जिसमें होती है, वह अबाधित सबका ही अपना आप है। मानने और न मानने वाले दोनों का ही वह अपना आप है। जब तक अपने को नहीं जानता तब तक अपने ही प्रतिबिम्ब को अन्य समझ कर भटकता रहता है। आत्मा के सिवाय और कुछ नहीं है और जो कुछ संसार

में दीखता है, वह काल्पनिक माया में अपना ही प्रतिबिम्ब है।

एक राजा जब मरने की तैयारी पर हुआ तब जो जो सुन्दर स्त्रियों की तसवीरें उसके पास थीं, उन सबको इकट्ठी करके उसने अपने राज भंडार की एक भीतरी कोठरी में बन्द करके रख दिया और अपने विश्वासी खजानची को बुलवा कर एकान्त में कहा "इन तसवीरों को राजकुमार से छुपाये रखना, क्योंकि वह युवान है और ये बहुत सुन्दर स्त्रियों के चित्र हैं, यदि वह इन्हें देख लेगा तो सुन्दरियों की खोज में लग जायगा और राज्य कार्य संभालना छोड़ देगा। जब तक वह राज्य कार्य की संभाल न करने लगे, विवाह न कर ले और उसकी बुद्धि स्थिर न हो जाय तब तक मेरी आज्ञा का पालन करके इन चित्रों को उसके हाथ में न जाने देना!" खजानची ने राजा की आज्ञा को स्वीकार करते हुए कहा "महाराज! मैं ऐसा ही करूंगा, अपनी सामर्थ्य तक इन चित्रों को छुपाये रक्खूंगा!" राजा का देहान्त हो गया और पाटवी कुमार जिसका नाम अचलसिंह था, राज्यारूढ़ हुआ। राज्य भार संभालते हुए उसने भंडार को भी खोलकर देखा। भंडार खोलते समय खजानची ने मने किया परन्तु राजा हुआ पाटवी अब खजानची की कब मानने वाला था! जब नये राजा ने खजानची को फटकार दी तब उसने कहा "आपके पिताजी की आज्ञानुसार

हित समझ कर ही मैं आपको मने करता हूं, भंडार खोलने से आपका क्या प्रयोजन है। भंडार पूर्ण है, उसमें पचास लाख के जवाहरात और दो करोड़ सोने चांदी के सिक्के हैं।" नये राजा ने एक न मानी और भंडार को खोलकर देखा। खजानची प्रत्येक वस्तु खोल खोलकर दिखलाने लगा, अन्त में पिछली कोठरी बन्द देखकर अचलसिंह ने कहा "इसमें क्या है ?" खजानची बोला "खाली है !" अचलसिंह बोला "खैर खाली है तो क्या, खोल, मैं उसे देखूंगा !" खजानची हाथ जोड़ नम्रता सहित बोला "उसमें जवाहरात आदि कोई मूल्यवान् वस्तु नहीं है ! आप उसे मत खुलवाइये, उसे देखने से कुछ फल न होगा, किन्तु आपका अहित ही होगा !" अचलसिंह न माना, उसने कोठरी खुलवाई और उसमें उत्तम उत्तम तसवीरों को देख कर वह उन्हें बाहर ले आया। वे तसवीर कारीगर की नमूना रूप थीं इसलिये राजा ने उनका नाश नहीं किया था। उसमें एक चित्र एक दश वर्ष की कन्या का था, जो दृढ़ वैरागियों के वैराग्य के ऊपर भी पानी फिरा कर लुभाने वाली थी ! अचलसिंह उसे देख कर प्रसन्न हुआ और खजानची से बोला "यह एक ही चित्र सब खजाने से विशेष दामों का है मैं इससे ही विवाह करूंगा ! मैं कल ही उसकी खोज के लिये जाऊँगा।" खजानची "हाय ! जिसके लिये बड़े महाराज

ने मने किया था, वह ही हो रहा है!" ऐसा सोच वेहोश हो गया। दूसरे दिन अचलसिंह चित्रावती के चित्र को लेकर चल पड़ा। वह जहां २ जाता वहां २ चित्रावती का समाचार इस प्रकार पूछ्ता:—"यह किस देश में है? किस राजा की कन्या है?" उस समय चित्रावती नाम की बहुत सी कन्यायें थीं। जो जहां बताता, वहीं अचलसिंह उसे देखने जाता और वहां जाकर उस कन्या की आकृति को चित्र की आकृति से मिलाता, जब न मिलती तब निराश होकर आगे चलता। मार्ग में अनेक प्रकार के कष्ट उठाता, खाने, पीने और रहने का किसी प्रकार का ढंग नहीं था। शरीर मलिन होता गया, बुद्धि बिगड़ने लगी, रात दिन की चिन्ता और परिश्रम से अचलसिंह दुर्वल होगया। उसके जाने के बाद उसके राज्य की भी अव्यवस्था हो गई! हाय री कामना! तेरे संग से बिचारा बाप दादाओं के राज्य को भी न भोग सका! चित्र की मोहिनी में चित्र के समान मूढ़ हुआ भटक रहा था! सब पृथिवी की प्रदक्षिणा कर डाली परंतु चित्रावती का पता कहीं नहीं मिला। बारम्बार निराश भी होता था कि कदाचित् बहुत दिन होने से मर गई हो, यदि मर गई हो तो भी पता तो लगना चाहिये कि कहां थी! इस प्रकार युग व्यतीत हो गये परन्तु मरी या जींती चित्रावती का पता आजतक अचलसिंह को न मिला।

यदि चित्रावती स्वयं कोई वस्तु हो, तो अचलसिंह को मिले! जो वह अचलसिंह ही हो तो अचलसिंह कैसे मिले? बात यह है कि अचलसिंह बालक था तब बराबर के लड़कों के साथ खेला करता था। एक दिन सब लड़कों ने मिल कर चित्रसैन और चित्रावती का तमाशा—नाटक किया। इस खेल में अचलसिंह चित्रावती बना था। उस समय का चित्र एक चित्रकार ने खेंच लिया था। अचल-सिंह के पास जो चित्र था वह स्त्री रूप धारण किये हुए स्वयं अचलसिंह ही का था। जिस चित्रावती को ढूढ़ रहा था, वह आप ही था, तब अचलसिंह को चित्रावती किस प्रकार मिलती! इसी प्रकार जीव का हाल है, जीव अचलसिंह है, बाहर उसका चित्र है। चित्र—माया में उसे परम शांति—परम सुख कहां से मिले! अपने में आप ही हो तो बाहर दूसरे में कहां से मिले! जिस प्रकार अचलसिंहने कामना वश अनेक कष्ट भोगे इसी प्रकार जीव का हाल है, जो कुछ दीखता है, जिसकी कामना करता है, जिसके लिये पागल होकर भटकता है, वह संसार और सांसारिक विषय चित्र के समान निर्जीव हैं। उनमें भूले पड़े हुए का किसी प्रकार भी निस्तारा नहीं हो सकता।

इस प्रकार जो अनेक युक्तियों से समझाकर स्वस्वरूप का भान कराना, स्थिति कराना है वह ही वेदान्त रहस्य

है। उसके बोध होने के लिये कथन रूप सहारे को ज्ञान कहते हैं और स्थिति रहस्य स्वरूप है।

प्रत्येक को यह मालूम होता है कि मैं हमेशा रहूंगा और किस प्रकार मेरी आदि हुई—मैं उत्पन्न हुआ यह किसी को मालूम नहीं है, यह भाव आत्मा को उत्पत्ति नाश रहित सिद्ध करता है और जब यह कहता है कि मेरा जन्म अमुक साल में अमुक दिन हुआ था, मैं इतने वर्ष का हूं, सब मरते हैं इसलिये मैं भी मरूंगा, तब शरीर के साथ एकता करके-शरीराध्यास से कहता है-शरीर ही मैं हूं, ऐसा मान कर कहता है, इस भाव से नहीं कहता कि आत्मा जन्मा है अथवा आत्मा मरने वाला है। मरने के समय में भी मुझको दुःख न हो, यह जो भाव होता है, वह शरीर के निमित्त नहीं होता पुनर्जन्म के मानने वाले को यह पूर्ण निश्चय है कि आत्मा कभी नहीं मरता, यदि आत्मा मरता हो तो जन्म किसका हो? शरीर का नाश होना तो जगत् में देखा ही जाता है. आत्मा नहीं मरता, उसको दूसरा शरीर प्राप्त होता है। जो पुनर्जन्म को मानने वाले नहीं हैं, वे ऐसा कहते हैं कि आत्मा-रूह का नाश नहीं है, किये हुए कर्मों का एक दिन (कयामत में) न्याय होगा और कर्मानुसार स्वर्ग नरक (बहिश्त, दोजख़) में जाना होगा, न्याय करने वाला ईश्वर (खुदा) होगा। स्वर्ग अथवा नरक में जाकर सुख अथवा दुःख का

भोग होगा। ये लोग ऐसा कहते हैं कि रूहें खुदा ने बनाई हैं परन्तु नाश होना नहीं कहते। नियम यह है कि जिसका नाश नहीं होता, उसकी उत्पत्ति भी नहीं होती इससे ऐसा मानने वालों का आत्मा—रूह उत्पत्ति रहित ही सिद्ध होता है। खुदा ने रूहें पैदा कीं यह कहना सृष्टि के आरम्भ में—कल्प के आदि में प्रकृति के क्षोभ से ईश्वर के सृष्टि रचने के समान हैं। इसलिये खुदा ने रूहें पैदा कीं यह कहने में कोई दोष नहीं है। निरीश्वरी आत्मा, ईश्वर, माया आदिक को न मान कर एक कुदरत को ही मानते हैं। एक को माने विना उनका भी काम नहीं चलता। ये लोग प्रत्यगात्मा का अविनाशी होना और आत्मा का स्थूल शरीर से भिन्न होना नहीं मानते हैं परन्तु समष्टि एक तत्त्व रूप कुदरत को अविनाशी मानते हैं। ये लोग कहते हैं कि कुदरत ऐसी ही चली आई है और चली जायगी यानी आदि अन्त रहित है। उपनिषद् की रीति से व्यक्ति भाव उपाधि कृत है और जब तक बोध नहीं होता तब तक सूक्ष्म शरीर की उपाधि है, इसलिये ऐसा कथन नहीं है कि व्यक्ति भाव अन्त रहित है, स्थूल शरीर सहित व्यक्ति भाव से सूक्ष्म व्यक्ति चिरंजीवी है परन्तु अमर नहीं है। एक आत्म—तत्त्व जिसको निरीश्वरी कुदरत कहते हैं, वह ही अमर है। यद्यपि निरीश्वरी का कथन बहुत स्थूल दृष्टि से है तो भी उपाधि सहित व्यक्ति भाव न रखते हुए है। यह उनका कथन

उपनिषद् से मिलता है क्योंकि आत्मा स्वरूप से एक है और वे लोग उपाधि की एकता करके ऐसा कथन करते हैं इसलिये अर्थ—मतलब में भिन्नता नहीं है। ये लोग स्थूल दृष्टि से जिसे कुद्रत कहते हैं उसे ही तत्त्व दृष्टि से तत्त्व के जानने वाले ब्रह्मचारी ब्रह्म कहते हैं। जैसे ब्रह्म—आत्मा सबका अपना आप है और उत्पत्ति नाश रहित है इसी प्रकार उन लोगों की कुद्रत भी उत्पत्ति नाश रहित ही है। व्यक्ति भाव में भी आत्म प्रकाश से व्यक्ति की सिद्धि है इसीसे सबको अमरपने का भाव होता है। जब यह भाव नाश वाले शरीर में मिलाकर करते हैं तब किसी का शिर और किसी का धड़ जोड़ते हैं, जो अयुक्त और असंभवित है, इसीको अज्ञान कहते हैं। जिसकी उत्पत्ति होती है, वह ही किसी का बनाया हुआ होता है। आत्मा आदि अंत रहित होने से, उसको किसी ने बनाया नहीं है। तत्त्व दृष्टि से आत्मा के सिवाय अन्य कुछ भी तत्त्व रूप से नहीं है, जो कुछ अन्य दीखता है वह अतत्त्व रूप, तुच्छ और भ्रम है। तत्त्व रूप आत्मा को अतत्त्व कैसे बना सकता है? आत्मा भी आत्मा को नहीं बनाता क्योंकि अपने आपको आप कोई किस प्रकार बनावे, अपने को अपने ने बनाया यह कहना अयुक्त है। जीव भाव भी आत्मा—परमात्मा—ईश्वर से बना हुआ नहीं है, बनता बिगड़ता जो दीखता है वह भूल है। भूल ने रज का गज कर डाला है। भूल के भाव

युक्त जीव भाव भूल में प्रवृत्त होता है, भूल वाला भूल में दुःख पाता है। तत्त्व रूप आत्मा की तो भूल में भी कुछ हानि नहीं है। इस प्रकार का तत्त्व ही परम तत्त्व है, वह ही वेदान्त का रहस्य है। सब लोगों और सब मजहबों का घूम घाम कर आने का वह ही स्थान है, वह ही सब की समाप्ति है। भूल वास्तविक है नहीं इसलिये जब भूल निकल जायगी तब वहां के वहां ही स्थिर हो जायँगे। जिस प्रकार तेली का बैल प्रति दिन कितने ही कोस चलता है, थक भी जाता है परन्तु जब देखो तब अपने स्थान पर ही होता है इसी प्रकार माया का सब कुछ अनुभव करते हुए, अपने स्थान से बहुत दूर आते जाते हुए भी आत्मा अपने स्थान पर ही है। उसमें बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था आदिक नहीं हैं और सुख दुःख भी नहीं है।

विमलचन्द्र नाम का एक राजा सद्गुणी, श्रीसम्पन्न और धर्मात्मा था। उसको सब प्रकार का सुख था। दुःख रहित सुख नहीं होता, इस नियम से यह विरुद्ध था। एक दिन विमलचन्द्र ने किसी मुसाफिर के मुख से सुना कि विचित्रवती नगरी में एक बड़ा जादूगर रहता है, उसके पास विचित्र दर्शनी एक बूटी है जो उस बूटी को सूंघता है, उसे अनेक प्रकार के नये२ अनुभव होते हैं, वह न देखने में न सुनने में आई हुई वस्तुओं को देखता, सुनता है और आनन्द का भी अनुभव करता है।

विमलचन्द्र की इच्छा हुई कि जादूगर से उस बूटी को लेना चाहिये। उसने अपने मुख्य दीवान को आज्ञा दी कि तुम सूंघने योग्य बूटी को जादूगर से मोल ले आओ, जो दाम वह मांगे, उसे देना परन्तु बूटी अवश्य लाना, मैं उसका अनुभव करना चाहता हूं। दीवान बुद्धिशाली था, नम्रता सहित कहने लगा "महाराज! बूटी लाने में तो कुछ आपत्ति नहीं है परन्तु जब वह माया की ही बूटी है तो वह आपके योग्य नहीं है, उसे मोल लेकर दाम व्यर्थ न खोना चाहिये। उसके सूंघने से विचित्र प्रकार का अनुभव होता हो, तो भी क्या हुआ? है तो सब माया ही! आप तो सब प्रकार का ऐश्वर्य भोग ही रहे हैं! झूंठे भोग से क्या लाभ होगा? मेरी समझ में तो उसमें सुख के साथ दुःख भी अवश्य होगा! जान बूझ कर दुःख ग्रहण करने की आप क्यों इच्छा करते हैं? कोई कैसा भी कंगाल क्यों न हो, विना मूल्य मिलती हुई, बहुत शोभा वाली दारिद्र की मूर्ति को न खरीदेगा! इसी प्रकार आपको भी जादूगरी की विचित्र दर्शनी बूटी को खरीदना न चाहिये!" विमलचन्द्र बोला "दीवानजी! आप सच कहते हैं परन्तु मैं बूटी सूंघने की इच्छा को रोक नहीं सकता! यदि उसमें दुःख हो तो क्या हुआ? मायिक होने से दुःख झूंठा और थोड़ी देर का होगा।" दीवान बोला "महाराज! दुःख का अनुभव झूंठा न होगा! यदि आपकी तीव्र

इच्छा है तो मैं बूटी मंगवाने का प्रबन्ध करता हूं!" दीवान ने एक लक्ष रुपये भेज कर एक वार सूंघने योग्य बूटी मंगवा ली! यह बूटी बहुत ही थोड़ी थी, एक वार सूंघने से सम्पूर्ण बूटी उड़ जाय इतनी बूटी एक लक्ष रुपये में आई थी। राजा विमलचन्द्र ने भोजन आदिक से निवृत्त होकर राज सभा में बूटी सूंघ ली। सूंघते ही वह बेहोश होकर गिर पड़ा। दीवानादिक ने चैतन्य करने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु एक घंटे तक राजा होश में न आया। सब सभासद् विचार ही रहे थे कि अब क्या उपाय करना चाहिये कि इतने में राजा चौंका और चैतन्य हो गया। उसे बहुत ही आश्चर्य हो रहा था, जो जो दुःख उसने भोगे थे वे सब स्पष्ट रूप से स्मृति में थे। इस समय राजा को दीवान का कहा हुआ याद आया और वह कहने लगा "दीवानजी! तुमने जो कहा था, सत्य ही कहा था, तुम्हारा कहना न मानने से मैंने बहुत कष्ट भोगा है!" सब सभा ने हाथ जोड़कर विनती की "महाराज! आपने जो जो दृश्य देखे हैं, उन्हें वर्णन करके सुनाइये!" विमलचन्द्र बोला "मैं क्या सुनाऊँ। मेरा पूरा पूरा फजीता हुआ है! कष्ट भी बहुत भोगा है तो भी मैं इस कारण सुनाता हूं कि मेरे समान कोई बूटी सूंघने की भूल न करे, तुम सब एकाग्र चित्त होकर सुनोः—

ज्यों ही मैंने बूटी सूंघी कि तुरन्त ही यहां की सब स्मृति जाती रही ! मैं एक घन्टे तक बेहोश रहा हूंगा, घन्टे भर में मैंने सवासौ वर्ष का अनुभव किया है। बूटी सूंघने के थोड़ी देर बाद मुझे मालूम हुआ कि मैं एक राजा की कन्या हूं और मेरी उमर कोई दश वर्ष की है। मेरे पिता का बहुत बड़ा राज्य है। मैं अपने पिता की एक ही कन्या थी, सखियों के साथ खेलती कूदती सब स्थानों पर घूमती फिरती थी, मेरे नौकर मुझे घूमने को मने करते थे। एक दिन मैंने दो नौकरों को इस प्रकार बात चीत करते सुनाः—

प्रथम नौकर—राजा की एक ही कुमारी है, उसका सुख भी राजा को बहुत दिनों तक नहीं रहेगा ! दूसरा नौकर—क्यों ? प्रथम नौकर—क्या तुझे खबर नहीं है ? हां ! तू नया नौकर है। बात यह है कि जब राजकुमारी का जन्म हुआ था तब ज्योतिषियों ने कुमारी के ग्रह देख कर कहा था कि राजकुमारी सोल्हवें वर्ष में चरखे का तकुआ लगने से मर जायगी। यह सुन कर जब राजा बहुत दुःखी हुआ तब ज्योतिषियों ने एक इष्ट बतलाया। राजा ने उस इष्ट को करके देवता को प्रसन्न करके यह वरदान पाया है कि कुमारी का मृत्यु नहीं होगा परंतु वह सौ वर्ष तक नींद में पड़ी रहेगी। सौ वर्ष पूरे होने पर जब समुद्र पार का राजकुमार आकर उसे जगावेगा, तब वह जागेगी। राजा

ने राज्य भर में डौंडी पिटवादी है कि कोई भी मनुष्य अपने घर में चरखा न रक्खे, न तकुआ रक्खे, जो कोई चरखा तकुआ रक्खेगा उसे देहांत की सजा दी जायगी। राजा का ऐसा विचार है कि जब मेरे राज्य में तकुआ ही नहीं रहेगा तो राजकुमारी के लगेगा कैसे? दूसरा नौकरः—तब तो मामला विकट है। राजा का विचार व्यर्थ है, किसी का भावी पलट नहीं सकता, ईश्वर की लीला अपार है। दोनों नौकरों की बात चीत सुन कर मैं दुःखी हुई। जब मैंने सखियों से इस बात का निश्चय किया तो बात ठीक निकली, मैं बालक होने से थोड़े दिनों में सब बात भूल गई और विवाह के योग्य हुई। पिता मेरा विवाह नहीं करता था। जब मैं पिता को अपने विवाह की बात चीत करते न सुनती तो मुझे नौकरों की पूर्व की बात याद आती थी। एक दिन मेरा पिता राज महल में नहीं था। मैं राज महल के पास के बगीचे में घूम रही थी। बाग के एक कौने में एक झोंपड़ी में एक बुढ़िया चरखा कात रही थी। मैंने अपनी उमर में कभी चरखा नहीं देखा था। मैं झोंपड़ी में जाकर चरखा देखने लगी। तकुआ अचानक मेरे हाथ में लग गया और लोहू बहने लगा। मैं भूमि पर गिर पड़ी और बेहोश हो गई, या यों कहो कि सौ वर्ष की नींद में पड़ गई। मेरी माता ने फिर आकर क्या किया, इत्यादि कुछ खबर न रही। मैं एक भारी जंगल के

बीच में एक महल में सो रही थी। वहां मैं किस प्रकार आई यह मुझे खबर नहीं! उस महल में कामदेव के अवतार के समान एक राजकुमार आया और उसने मुझे जगाया। मैंने उसे देख कर कहा 'सचमुच! मेरे उद्धार करने वाले आप ही हो! आपने मुझ पर बड़ा उपकार किया है!' राजकुमार ने प्रेम दृष्टि से ऐसा दिखलाया कि मेरा कथन सत्य है। हम दोनों ने एकांत स्थान में प्रेम भरी बात चीत की।

हम दोनों ने अपने मिलाप को देवता का अनुग्रह समझा, नहीं तो सौ वर्ष की नींद लेकर भला! कौन जाग्रत होता है! मेरे वंश में कोई भी मनुष्य नहीं रहा था। लोगों से मालूम हुआ कि मेरे पिता के मृत्यु के बाद अन्य राजा ने राज्य छीन लिया था। मैंने राजपुत्र के साथ गुप्त विवाह कर लिया और वहां ही रही। राजपुत्र ने मेरा नाम निद्रावती रक्खा। वह अपनी राजधानी में चला जाया करता और समय समय पर मुझसे आकर मिला करता था। मेरे पिता के और राजपुत्र के वंश में परम्परा से शत्रुता थी इसलिये अपने पिता के जीते जी वह मुझसे प्रकट विवाह नहीं कर सकता था। तीन साल में मेरे एक पुत्र और एक पुत्री हुई। हमने पुत्र का नाम अंशुकुमार और पुत्री का नाम प्रभात कुमारी रखा। दो वर्ष व्यतीत होते ही मेरे श्वसुर का देहांत हो गया और मेरा पति राजा

हुआ, तब उसने मुझे और दोनों बच्चों को राजमहल में ले जाकर रखा और मुझे पटरानी बनाया। वृद्ध रानी यानी मेरी सास इस बात से बहुत क्रोधित हुई परन्तु अब वह हमारे विरुद्ध कुछ कर नहीं सकती थी इसलिये प्रत्यक्ष में कुछ न बोलती। उसके दिल में मेरे बच्चों सहित मुझे मार डालने का विचार अवश्य था, जो आगे मालूम हुआ। थोड़े दिन पीछे जब प्रभात कुमारी की उमर कोई पांच साल की और अंशुकुमार की उमर तीन वर्ष की थी तब पास वाले एक अन्य राजा से युद्ध हुआ। मेरा पति मुझे और बच्चों को राजमाता को सौंप कर युद्ध करने को चला गया।

एक दिन मेरी सास ने जल्लाद को बुलाकर कहा "जल्लाद! (प्रभात कुमारी की तरफ अंगुली करके) इस लड़की को मारकर, इसका लोहू एक पात्र में भर कर मुझे दिखला! मैं इसके बदले तुझे बहुत सा इनाम दूंगी!" जल्लाद यह सुनकर दुःखी हुआ परन्तु ना न कह सका। प्रभात कुमारी को जल्लाद महल में से लेगया। यह देखकर मैं बहुत दुःखी हुई, मेरा कोई उपाय चल नहीं सकता था। सात दिन पीछे मेरी सास ने फिर जल्लाद को बुलाकर कहा कि मैं अंशुकुमार का रक्त देखना चाहती हूं। जल्लाद उसे भी मारने को ले गया। मैं दुःख के मारे पागल सी हो गई थी, दिन रात्रि सोच किया करती थी।

राजा के आने का कोई निश्चय नहीं था। एक सप्ताह बाद मेरी सास ने फिर जल्लाद को बुलाकर कहा कि रानी निद्रावती को मारकर उसका रक्त मुझे दिखला। मैं जिस स्थान पर दुःख के मारे मृतक सी पड़ी थी वहां जल्लाद ने आकर मेरी सास का हुक्म सुनाया। तब मैं दुःखी होती हुई बोली कि हे जल्लाद, मेरे प्राण समान कुमार और कुमारी का जो हाल तूने किया है, वैसा ही मेरा भी कर, मुझे उनके पास जल्दी से भेज दे। मेरी सास के क्रूर बर्ताव से जल्लाद को दया आई! जल्लाद का कठोर हृदय भी द्रवीभूत हो गया! वह मुझे राज महल से उठा लेगया। अपने घर ले जाकर उसने मुझसे कहा कि मैंने राजकुमारी और राजकुमार को मारा नहीं है, उन दोनों को छुपा रखा है। मैं तुझे भी नहीं मारूंगा। मेरे घर के भीतर के भाग में तुम तीनों रहो! यह कह कर वह दोनों बच्चों को मेरे सामने ले आया। मैं बच्चों को देखकर कुछ सुखी हुई और राजा के आने तक जल्लाद के घर छुपे रहना मैंने स्वीकार किया और जल्लाद को शाबाशी दी। उसका घर राजमहल से कुछ दूर नहीं था। एक दिन मेरी सास पालकी में बैठी हुई जल्लाद के घर के सामने से जा रही थी। कर्मवश प्रभात कुमारी उस समय रो रही थी। उसका शब्द मेरी सास ने पहिचान लिया। वह पालकी में से उतर, क्रोध से गर्जना करती हुई जल्लाद के घर में घुस

आई । हम सब उसे देख कर कांपने लगे । जल्लाद, उसकी स्त्री और हम तीनों बन्दीघर में बन्द कर दिये गये । मेरी सास ने ऐसा प्रसिद्ध किया कि रानी बदचलन होने से जल्लाद के यहां जाया करती थी ।

दूसरे दिन मेरी सास ने एक बड़ा गड्ढा तैयार कराया उसमें बड़े २ विष वाले सर्प छोड़ दिये और हम पांचों को वहां ले जाने की सेवकों को आज्ञा दी । राज सेवक हम सब को कारागार में से निकालकर गड्ढे के पास लाये । प्रचंड क्रोध की रक्त मूर्ति बनकर मेरी सास हमारी तरफ देखकर बोली "पापी मनुष्यो ! तुमने महान् पाप किया है, उसका फल इस गड्ढे में गिर कर भोगो ! हे दुष्ट रानी ! (जल्लाद को दिखला कर) इस नीच मनुष्य के साथ अयुक्त व्यवहार करते हुए तुझे शर्म न आई ! कुलटा ! तूने मेरे कुल को कलंकित किया है, इस कारण तेरे बच्चों सहित तुझको विष वाले सर्पों के मुख में डाल देना ही उचित है।" मैं गड्ढे में बड़े २ सर्प देखकर पृथ्वी पर बैठ गई और प्रभु से इस प्रकार प्रार्थना करने लगी "हे अनाथों के नाथ ! हे दुःख सागर से तारने वाले ! सत्य के साथी ! हे पापियों के विनाश करने वाले प्रभु ! तू हमारी सहायता कर, पूर्व में तूने अनेक सतियों की टेक रखी है ! जो मैं सच्ची होऊं, तो तू मेरी सहायता कर, दूध का दूध और पानी का पानी करके दिखला दे ! तूने द्रोपदी की लजा

रखी, मेरी भी लज्जा रख, हिरण्य कशिपु को मार कर प्रह्लाद को बचाया था, मुझे भी इस दुष्ट राज माता से बचा, यह हमें दुःख दे रही है! हे विश्वम्भरनाथ! मैं दुःख से नहीं डरती! जो जगत में जन्मा है प्रथम या पीछे मरेगा ही! हे नाथ! मुझ पर झूठा आरोप रखा गया है, मैं निर्दोष मारी जाती हूं, इससे मुझे दुःख होता है! हे सचराचर व्यापक! सत्य क्या है, यह तू जानता है, सच की लज्जा रख, पापी को दण्ड दे, यह मेरी प्रार्थना है।" मुझे प्रार्थना करते हुए देख कर प्रभात कुमारी भी प्रार्थना करने लगी। मेरी सास सिंह के समान गर्जना करती हुई बोली "हे कुलटा! तूने मेरे कुल को कलंकित किया है, तुझे तो इससे भी विशेष दुःख देकर मारना चाहिये! जल्दी गिर, गड्ढे में, गिर कर विषधर सर्पों का भक्ष्य बन जा! नहीं तो म्लेच्छ से गड्ढे में ढकेलवा दूंगी! हे कुलांगार पापिन! पापाचरण करते तुझे कुछ विचार न आया! महा सती हो ऐसा ढोंग कर रही है, क्या! अब तू गड्ढे में गिरती है, या म्लेच्छ को तुझे गिराने की आज्ञा दूं?" मैं यह विचार कर कि मरना तो है ही, फिर अपमान से क्यों मरूं, पुत्र और पुत्री को पकड़ कर गड्ढे में गिरने को ही थी कि इतने में राजा वहां आकर खड़ा हो गया! ईश्वर ने मेरी प्रार्थना सुनकर मेरे पति को भेज दिया हो, ऐसा अनुभव हुआ, मैं और मेरा पति क्षण भर को स्तब्ध हो

गये। वह इस व्यवसाय को समझ न सका! मेरी सास अचानक राजा को आया हुआ देखकर उन्मादिनी हो गई, उसे कुछ सूझ न पड़ी, वह स्वयम् उस गड्ढे में कूद पड़ी! ऐसा देखकर मैं चोंक पड़ी! चोंकते ही दुष्ट लीला का अन्त हुआ और मैं तुम्हारे सामने जाग्रत हो गया! हाय! क्या विचित्रता थी! मैं कहां पुरुष और कहां स्त्री का अनुभव! जो जो कष्ट मैंने सहे हैं, वे सब झूंठे थे, ऐसा मैं जानता हूँ तो भी जब याद आ जाती है तब हृदय कांप जाता है! क्या झूंठ में इतनी सामर्थ्य है? आश्चर्य है कि मैंने सौ वर्ष का अनुभव किया परन्तु अपने स्थान से मैं तिल भर भी नहीं खिसका! सच है, मैंने सदा कष्ट भोगा, सच देकर ही कष्ट भोगा! मैं नहीं जानता था कि झूंठा दृश्य सच्चे से भी सच्चा होकर महा कष्ट का अनुभव कराता है!"

ऊपर के दृष्टान्त से मालूम होगया होगा कि सब कुछ एक तमाशे के समान हुआ! जिस प्रकार यह हुआ, इसी प्रकार संसार की रचना है। जिस प्रकार यह झूंठ था इसी प्रकार आत्म तत्त्व की अपेक्षा संसार भी झूंठा है। राजा की प्रथम हालत वेदान्त रहस्य का शुद्ध आत्म तत्त्व है। राजा में सुख दुःख, आना जाना आदिक कोई भी विकार न हुआ। माया की सूंघने वाली इच्छा को ही सब विकार हुआ। राजा विमलचन्द्र आत्म स्वरूप होने से अधिष्ठान

रूप है। निद्रावती और सब रचना मायिक है और राजा में अध्यस्त है। इस अध्यस्त से अधिष्ठान रूप राजा के शुद्ध स्वरूप में कोई विकार नहीं हुआ. इसी प्रकार शुद्ध आत्म तत्त्व को समझना चाहिये। जब माया का सुंघा हुआ नशा किसी कष्ट—चोंकने से उतरता है तब ही अपने आद्य स्वरूप का बोध होता है।

सब वैभव जो माया में दीखता है, आत्मा का ही है इसलिये वैभव वाला विमलचन्द्र आत्मा है। जब उसने माया की तरफ लक्ष दिया—मायिक विचित्र बूटी सूंघी तब वह विमलचन्द्र से मलचन्द्र हो गया। अपने आत्मा को भूल जाना ही बेहोश होना था। आत्मा की सब स्मृति माया की मलिनता से उड़ गई और उसने अपने को आठ वर्ष की लड़की जाना, यानी अपने को पुर्यष्टका रूप समझा। जो स्त्री से उत्पन्न होता है, वह वास्तविक पुरुष नहीं कहा जाता, उसे स्त्री से उत्पन्न हुआ ही कह सकते हैं। इसी प्रकार माया की बूटी सूंघने से जो बना है, वह जीव है। जीव भाव स्त्री के समान ही है क्योंकि जीव भाव बुद्धि युक्त होता है, इससे आत्मा को स्त्रीपने का अनुभव होता है। पुरुष स्वतन्त्र और सामर्थ्य वाला है। जीव भाव परतन्त्र और असामर्थ्य वाला है इसलिये उसमें स्त्री के लक्षण होने से उसे स्त्री कहें, तो ठीक है। जब आत्म भाव हट जाता है और माया का भाव जाग्रत्

होता है तब जीव कहा जाता है। जब आत्मा की तरफ सो जाता है—कुछ जानता नहीं ऐसा जीव निद्रावती है, अविद्या का स्वरूप होने से भी जीव निद्रावती है। ज्योतिषी पूर्व संस्कार हैं। चरखा माया का चक्र है। तानने वाला, खेंच कर बहुत लम्बा करने वाला, बल देने वाला तकुआ संसार है। संसार के खेंच कर चढ़ाये हुए तन्तु का अन्त नहीं आता। इस तकुए के लगने से जीव भाव निद्रा में पड़ता है। सोलह वर्ष यानी जवानी के आरम्भ तक संसारी वायु विशेष नहीं लगता, जवानी आते ही संसार की भोग वासना प्रबल होती हैं। महा अविद्या से अंध होना नींद है। मनुष्य की सामान्य आयु का प्रमाण सौ वर्ष का है, यह सौ वर्ष की नींद है। जब स्त्री रूप जीव बना तब पति भी चाहिये। पार का राजकुमार जीव का पति ईश्वर है वह उसे नींद में से जगाता है। राजमाता माया है, जिससे ईश्वर का स्वरूप बना है। माया मूलाविद्या है और विशेष मलिन अज्ञान रूप जीव निद्रावती है जो माया के वंश से विरुद्ध वंश की है, वह (माया) उस जीव का आत्म सम्बन्ध नहीं चाहती। पुत्र पुत्री विवेक और वैराग्य हैं। जब सबका नाश रूप दुःख होता है तब एकाग्रता से ईश्वर में चित्त लगता है। जब ईश्वर प्रकट होता है, आत्म साक्षात्कार होता है, तब जीव चौंकता है, आद्य माया रूप राजमाता अनेक विष-

वर—विषय रूप गड्ढे में आप ही गिरकर अपने प्राण त्याग देती है। चौंकने से प्रपंच उड़ जाता है और स्वबोध होता है।

जगत् में मजहबों की भिन्नता है, सब मजहब एक दूसरे से भिन्न भिन्न प्रकार वाले हैं और फल में भी अन्तर वाले दीखते हैं। वेदान्त रहस्य—आत्म तत्त्व ही एक ऐसा है जो सबका अन्तिम है। उसमें सबकी ही एकता होती है। आत्मा ही सबका अध्यात्म धर्म है, यही अन्तिम एक तत्त्व सबकी समाप्ति का स्थान है। जैसे अनेक नादियां भिन्न भिन्न देश में होकर बहने वाली, छोटी बड़ी, टेढी सीधी और स्थान के प्रभाव से अनेक रंग और गुण वाली होती हैं; परन्तु समुद्र उन सबका एक अन्तिम स्थान है ऐसे ही आत्म तत्त्व है। जैसे समुद्र सब नादियों और जलाशयों का आदि और अन्तिम स्थान है, इसी प्रकार सब मजहबों और संसार का एक अद्वैत आत्म तत्त्व आदि और अन्तिम स्थान है॥ चाहे कोई कितना ही घूमे अन्त में वहीं पहुंचेगा। कोई कितना ही प्रयत्न करे, कितना ही सामर्थ्य प्राप्त कर ले; द्वैत में दुःख ही रहता है। अद्वैत तत्त्व-भाव विना पूर्ण रूप से दुःख की निवृत्ति नहीं हो सकती, एक अद्वैत तत्त्व ही संपूर्ण दुःखों की निवृत्ति का साधन है, ऐसा हर किसी बुद्धि वाले को अवश्य स्वीकार करना पड़ता है। अद्वैत तत्त्व अपना ही होने से शास्त्र,

युक्ति और अनुभव से यह बात ही सिद्ध होती है कि अपने आप में ही अपनी विश्रान्ति होती है, अन्य में नहीं होती। द्वैत भावनावलम्बी अद्वैत आनन्द को न जानकर द्वैत के दुःख सहित आनन्दाभास को भले ही पसन्द किया करें। अद्वैत का अनुभव न होने के कारण सत् शास्त्र और सत्पुरुषों के ऊपर श्रद्धा न होने के कारण अद्वैत को तुच्छ समझें और दुःख वाले दुःख छोड़ने की रुचि न करें यह सामान्य व्यवहारिक दृष्टि से होता है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। ऐसा होना ही अज्ञान का बना रहना है, ऐसा न हो तो अज्ञान है ही कहां !

शास्त्र को मानने वाले और न मानने वाले या वेदान्त की अति उत्तम बातों से चौंकने वाले सब ही सुख चाहते हैं। ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जो सुख की चाहना न करता हो। सुख क्या है, किससे सुख होता है, यह बात जिसने अपनी बुद्धि के अनुसार जैसी समझ रखी है, ऐसा वह मानता है। अब विचारना चाहिये कि वास्तविक सुख कहां है ? यदि विषयों में सुख माना जाय तो यह बन नहीं सकता क्योंकि एक ही विषय जो एक को सुख कर प्रतीत होता है, वह ही दूसरे को दुःख रूप प्रतीत होता है, इतना ही नहीं परन्तु एक मनुष्य को एक समय एक विषय सुख रूप मालूम होता है, वह ही दूसरे समय दुःख रूप मालूम होता है। यदि विषयों में ही सुख होता

तो जब जब वह होता तब तब सुख होना चाहिये था; अथवा प्रत्येक को उसमें सुख ही प्रतीत होता किन्तु ऐसा नहीं है, यह सबके अनुभव में आई हुई बात है, इससे सिद्ध होता है कि विषय में सुख नहीं है। यदि कोई कहे कि विषय के सम्बन्ध से सुख मालूम होता है तो यह भी नहीं बनता क्योंकि कोई परदेश में व्यापार करता है। वहां उसे एक लाख रुपये का मुनाफ़ा हुआ। यह बात उसे चिट्ठी अथवा तार से मालूम हुई। अभी रुपये का सम्बन्ध नहीं हुआ है तो भी उस मनुष्य को सुख मालूम होता है। यदि सम्बन्ध से ही सुख होता हो तो ऐसा न होना चाहिये था। यदि कोई कहे कि प्रिय विषय के सम्बन्ध के ज्ञान से सुख होता है तो यह ठीक नहीं है क्योंकि किसी का पुत्र परदेश गया हो, वहां बहुत समय तक रह कर, पीछे अपने देश में आकर अपने पिता से मिले तो बहुत दिनों के बाद मिलने के कारण पिता और पुत्र दोनों को सुख—आनंद होगा परन्तु वही पुत्र जब वहीं रहने लगे तो बीस पच्चीस दिन के बाद जो सुख प्रथम मिलाप से पिता पुत्र को हुआ था, वह अब न होगा। सम्बन्ध का ज्ञान जो जब था सो अब भी है, कहीं चला नहीं गया वस्तु पास ही है तो भी सुख की न्यूनता है इससे सिद्ध है कि प्रिय विषय के सम्बन्ध के ज्ञान से सुख होता है, इस प्रकार के सुख की व्याख्या करना भी ठीक नहीं है। प्रिय वस्तु की प्राप्ति

या उसके सम्बन्ध के ज्ञान से जो सुख मालूम हुआ था वह सुख आंतर में था, बाहर नहीं था। आंतर में कोई नया पदार्थ नहीं गया था, भाव से ही प्रसन्नता हुई थी। वह भाव इतना बलिष्ट था कि उसने उस क्षण में सब भावों को परास्त कर डाला था—एक ही भाव रह गया था जो अत्यंत निर्मल था; इस कारण आत्मा जो स्वाभाविक आनंद स्वरूप है उसका प्रतिबिम्ब उस एक भाव में निर्मलता से पड़ा था। यह ही आत्मा का आनन्दाभास विषय के सहारे से मालूम होने लगा था। जब चित्त की ऐसी एकाग्रता और निर्मलता प्रियता के भाव से हो जाती है तब सुख मालूम होने लगता है। वह ज्ञान, सब कुछ होते हुए भी जब प्रियता की एकाग्रता नहीं होती तब सुख मालूम नहीं होता, यह ही सुख की न्यूनता का कारण है। विचार दृष्टि से मालूम होता है कि सुख का स्थान विषय सम्बन्ध अथवा उसका ज्ञान नहीं है परन्तु उसका खजाना हमारे भीतर है। आड़ होने से वह हमको मालूम नहीं होता। जब आड़ बहुत सूक्ष्म रह जाती है तब आते हुए आभास को लोग सुख समझ लेते हैं और उसका आरोप विषयों में करते हैं। वास्तविक सुख का भंडार तो वेदान्त रहस्य—आत्मा ही है।

सब प्रकार के दुःखों की आत्यंतिक निवृत्ति और आद्य स्वरूप की प्राप्ति के लिये आत्मा—अपने को ही

जानना चाहिये, इसके सिवाय अन्य सब प्रयत्न निष्फल है। आत्म तत्त्व का बोध अपने आप ही होता है। यदि शास्त्र कथन से बोध करने वाला समझ न सके तो शास्त्र और गुरु का उपदेश भी व्यर्थ ही जाता है। जो अपने करने का कार्य है उसे जब आप करेंगे, तब ही होगा, शास्त्र और गुरु माया में ही उपदेश करते हैं, उस उपदेश से माया की मर्यादा में से निकल कर आत्मा को जानना जानने वाले का कार्य है। बोध के निमित्त जितने प्रयत्न किये जाते हैं, सब गौण हैं, प्रधान रूप से फल दाता नहीं हैं, जो कुछ प्रयत्न और उपदेश है, वह अज्ञान की निवृत्ति में मदद रूप है, अज्ञान की निवृत्ति के बाद ज्ञान प्राप्त होता है। अज्ञान की निवृत्ति और स्वरूप का बोध दोनों भिन्न भिन्न कक्षा के हैं इसलिये अज्ञान की निवृत्ति से बोध उत्पन्न हुआ ऐसा नहीं कह सकते। बोध स्वरूप अखंड है, अज्ञान की निवृत्ति उसे उत्पन्न नहीं कर सकती और अज्ञान की संपूर्ण निवृत्ति भी बोध के पश्चात् ही होती है। अज्ञानियों के अज्ञान का कारण जो भ्रम है उस भ्रम की निवृत्ति होने पर स्वयंप्रकाश ऐसा जो आत्मा वह अपने प्रकाश से आप प्रकाशित होता है, उसे ही वेदान्ता-चार्यों ने दो भाव से मोक्ष का स्वरूप कथन किया है। जगत् के समस्त दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति। जगत् के दुःखों की आत्यान्तिक निवृत्ति भ्रांति—

व्यवहारिक सत्ता में है और परमानन्द की प्राप्ति पारमार्थिक सत्ता में है इसलिये एक ही से दोनों फलों की सिद्धि नहीं होती यद्यपि बोध दोनों का एक ही वस्तु है। वेदान्त का यह बहुत सूक्ष्म रहस्य है। जब तक इसे यथार्थ नहीं समझते तब तक साक्षात्कार होना अशक्य है। कर्म, उपासना और बुद्धि से जाना हुआ सब प्रकार का ज्ञान माया में है और ज्ञान स्वरूप उनसे विलक्षण है। जैसे अज्ञान मायिक है इसी प्रकार ज्ञान भी मायिक है। ज्ञान अज्ञान का प्रतिपक्षी है और माया की हद में है। जो ज्ञान त्रिपुटी सहित तुच्छ बुद्धि से होता है, वह सब मायिक है। कर्म, उपासना और मायिक ज्ञान साम्राज्य मन्दिर के सोपान नहीं है क्योंकि सोपान और मन्दिर एक कक्षा में होते हैं, विरुद्ध कक्षाओं में नहीं होते। कर्म, उपासना और ज्ञान मायिक होने से परब्रह्म में अध्यस्त हैं, परब्रह्म सबका अधिष्ठान है। अध्यस्त और अधिष्ठान की कक्षायें भिन्न भिन्न हैं इसलिये अध्यस्त को अधिष्ठान के सोपान कहना मूर्खता है क्योंकि अध्यस्त के विशेष विशेष बोध से तो अधिष्ठान का विशेष विशेष अज्ञान होता है। अध्यस्त की निवृत्ति और अधिष्ठान के विशेष ज्ञान से सच्चा बोध होता है। सच्चे पदार्थ को अधिष्ठान कहते हैं और उसमें भ्रांति से जो और दीखता है, उसे अध्यस्त कहते हैं। अध्यस्त सच्चा नहीं होता किन्तु भ्रांति में दीखते हुए चित्र होते हैं और जिस समय अध्यस्त दीखता है

तब अधिष्ठान का सामान्य बोध होता है, विशेष बोध नहीं होता। अध्यस्त की प्रतीति में ऐसा बोध नहीं होता कि यह अध्यस्त है। यदि अध्यस्त के प्रतीति काल में यह अध्यस्त है ऐसा बोध हो जाय तो अध्यस्त मिथ्या हो जाता है। अधिष्ठान के बोध से अध्यस्त का बोध नहीं होता क्योंकि अध्यस्त भ्रान्ति का है, वस्तुतः नहीं है। अध्यस्त भ्रांति रूप होने से अनेक मनुष्यों को अनेक प्रकार का दीखता है और अधिष्ठान एक होने से सबको एक ही प्रकार का दीखता है। अध्यस्त आदि अन्त में शून्य और मध्य में भ्रांति से प्रतीति वाला है। अधिष्ठान आदि अन्त में सच्चा और मध्य में—भ्रांति काल में विशेष प्रतीति रहित है। अध्यस्त वस्तुतः नहीं है इसलिये भ्रांति में दीखता हुआ भी तीनों काल में है ही नहीं और अधिष्ठान सत् रूप होने से भ्रांति में नहीं दीखता हुआ भी वह कहीं गया नहीं है तीनों काल में ही है। इस प्रकार अधिष्ठान और अध्यस्त का भेद है। जो सबका आद्य अधिष्ठान है वह वेदान्त रहस्य है और जो उसमें अध्यस्त है वह ब्रह्मांड है। अधिष्ठान और अध्यस्त का भेद भी मुमुक्षुओं के समझने के निमित्त, अभेद का बोध कराने के लिये कहा गया है, नहीं तो वेदान्त रहस्य ही सम्पूर्ण भरा हुआ है। अधिष्ठान की अपेक्षा अध्यस्त और अध्यस्त की

अपेक्षा से अधिष्ठान कहा जाता है। तत्त्वज्ञ को तत्त्व स्थिति में अध्यस्त और अधिष्ठान का भाव नहीं होता, वह तत्त्वमय होता है। उसकी दृष्टि में सब कुछ तत्त्व स्वरूप एक ही होता है।

एक समय एक क्षत्रिय और एक ब्राह्मण दो मित्र एक स्थान से दूसरे स्थान को जा रहे थे। चलते चलते सायं-काल हो गया और ग्राम थोड़ी दूर रह गया। रात्रि का अंधेरा बढ़ता जा रहा था। जिस स्थान पर वे अब थे वहां से थोड़ी दूर पर पीपल का एक विशाल वृक्ष था। इन लोगों ने सुन रक्खा था कि इस पीपल पर एक भूत रहता है, रात्रि में आने जाने वालों को दुःख देता है और कभी कभी मार भी डालता है। इस सुने हुए की उन्हें वहां स्मृति हो आई। उस पीपल में थोड़ी दूर से उन्हें भूत की अस्पष्ट शकल दिखाई दी। क्षत्रिय बोला "हे भूदेव! ग्राम कुछ दूर रह गया है, अंधेरी हो गई है। मैंने सुना है कि इस वृक्ष पर एक भूत रहता है!" ब्राह्मण को अस्पष्ट तो कुछ मालूम होता ही था वह मित्र के कहने से देखने लगा और देख कर बोला "वीर! तू सच कहता है, उस पेड़ के पास देख भूत खड़ा है! अब अपने ग्राम में किस प्रकार जा सकेंगे? विकाल भूत दीखता है! हाथ पैर फैलाये हुए खड़ा है!" ब्राह्मण के कहे अनुसार क्षत्रिय को भी भूत दिखाई दिया। ब्राह्मण बोला "इस

भूत ने अनेकों मनुष्य और जानवरों की जान ली है, इस स्थान से रात्रि को कोई आता जाता नहीं है! अब वह हमको जीता नहीं छोड़ेगा! अब तू अपनी वीरता को दिखला।" क्षत्रिय बोला "घबराता क्यों है? हिम्मत रख। हिम्मत बिना मनुष्य की कौड़ी की कीमत होती है। हमको अपना पुरुषार्थ काम में लाना चाहिये। क्षत्रिय का बाण ब्राह्मण का मंत्र सामर्थ्य वाले होते हैं। मैं अपना धनुष चढ़ाता हूं, बाण मारता हूं, तू भी अपने इष्ट मंत्र का जाप कर, क्षत्रिय और ब्राह्मण दोनों की सामर्थ्य से भूत भाग जायगा, अथवा मारा ही जायगा!" ब्राह्मण बोला "तुझमें तो वीरत्व है, मैं तो रंक ब्राह्मण हूं; मुझमें हिम्मत नहीं है, मैं तो उसे देखते ही घबरा गया हूं; मंत्र जाप और प्रार्थना शुद्ध बुद्धि और एकाग्रता से होती हैं।" क्षत्रिय बोला "वाह! यह घबराने का समय नहीं है, घबराने से काम नहीं चलेगा, तुझे अपनी जान की जितनी चिंता है, उतनी ही मुझे अपनी जान की है, तो भी मैं दृढ़ हूं, बाणों से भूत को मारने का पराक्रम करना चाहता हूं, तू भी थोड़ा धैर्य रख; इष्ट मंत्र का जाप कर।" ऐसा कहते हुए क्षत्रिय ने भूत के ऊपर बाण चलाना आरंभ किया, पणच को कान पर्यन्त खेंच कर जोर जोर से बाण मारने लगा। ऊपर से तो वह हिम्मत रखता था परंतु अंधेरा होने से उसके भीतर भय घुस गया था। उसे

वाण चलाता हुआ देख कर ब्राह्मण भी अपने इष्ट मंत्र का जाप करने लगा, किसी प्रकार रक्षा हो इसलिये प्रार्थना भी करने लगा "हे ईश्वर ! हे दीनबंधो ! आप ही इस भूत से हमारी रक्षा कीजिये, हमारा कोई अपराध नहीं है, इस दुष्ट ने हमको मार्ग में रोक रखा है, कृपा करके आप उसकी बुद्धि को पलट दीजिये, जिससे वह हमारे मार्ग में से चला जाय अथवा मेरे मित्र के वाण से उसका वध हो जाय, किसी भी प्रकार आप हमारी रक्षा कीजिये, विशेष देर होगी तो यह जंगल है, अंधेरा हो गया है, जंगल के विकाल जानवर निकल पड़ेंगे, उनका भी हमको भय है।" क्षत्रिय ने भूत की तरफ खूब ही वाण चलाये, कई तो भूत के पास होकर निकल गये, कोई २ उसके लगा भी, परन्तु उससे उसकी कुछ हानि न हुई ! वह अपने स्थान से किंचित् भी न हटा ! अब क्षत्रिय के पास एक ही वाण रह गया था। ब्राह्मण भी स्तुति और जप करते करते एक घंटा हो जाने से थक गया था। दोनों ही निराश हो रहे थे क्योंकि अभी तक भूत ज्यों का त्यों ही खड़ा था; इतने में एक पेड़ की आड़ में से चन्द्र का प्रकाश हुआ। इस प्रकाश में जब दोनों मित्र देखने लगे तो जिसको उन्होंने भूत जाना था, वह भूत नहीं था, जो भूत था सो भाग गया था, भूत के स्थान में एक सूखे हुए वृक्ष का ठूंठ दिखाई पड़ा ! दोनों को अपनी भूल मालूम हुई। प्रकाश

ने भूत को भगा दिया। दोनों अपनी भूल से व्यर्थ दुःखी हुए घबराये, इसका पश्चात्ताप करने लगे और भूत नहीं है, आपत्ति नहीं है ऐसा जान कर प्रसन्न हुए। ब्राह्मण ने हंसी करते हुए क्षत्रिय से कहा "हे वीर पुरुष! तेरी वीरता भूत के ऊपर अनेक बाण छोड़ने पर कुछ काम न आई!" क्षत्रीय बोला "मित्र मेरी वीरता के समान ही तेरे जप स्तुति और तेरे इष्ट ने भूत को न भगाया!" ब्राह्मण बोला "ऐसा क्यों कहता है? मेरी प्रार्थना ही ईश्वर ने सुनी है, उसने ही चन्द्र का प्रकाश किया है, तब ही भूत भागा है।" क्षत्रिय बोला "वाह! तेरे ईश्वर ने अच्छी सहायता की, चन्द्र का प्रकाश हुए विना भूत को भगाया होता तो जाना जाता कि ईश्वर ने सहायता की!" दोनों ही हंसी खुशी से जिस स्थान पर जाने वाले थे वहां चन्द्र के प्रकाश में चले गये।

इस दृष्टांत से अध्यस्त और अधिष्ठान को समझना चाहिये। इसमें लकड़ी का ठूंठ अधिष्ठान है और ठूंठ रूप अधिष्ठान में प्रतीत होने वाला भूत अध्यस्त है। इसी प्रकार परब्रह्म अधिष्ठान है और ब्रह्माण्ड उसमें-अध्यस्त है। अंधेरे में भूत की प्रतीति थी इसी प्रकार अज्ञान में ब्रह्मांड की प्रतीति है। उजाला होते ही भूत भाग गया वास्तविक था ही नहीं, ठूंठ ठीक ठीक दीख पड़ा इसी प्रकार ज्ञान रूप प्रकाश होते ही अज्ञान का ब्रह्मांड रूप भूत भाग

जाता है और वस्तु रूप परब्रह्म ही शेष रहता है। जिस प्रकार क्षत्रिय की बाण चलाने रूप क्रिया और ब्राह्मण की स्तुति रूप उपासना भूत को भगाने में समर्थ न हुई इसी प्रकार शुभ कर्म और उपासना जगत् रूप भूत के निवृत्त करने में असमर्थ है। यदि कर्म और उपासना मुमुक्षु भाव से हों तो शुद्धि का हेतु होते हैं परन्तु विना ज्ञान परम पद की प्राप्ति नहीं होती।

जितने धर्म यानी मजहब संसार में हैं वे सब मायिक हैं, माया ही में हैं और माया में रह कर ही ईश्वर का अनुमान कराते हैं। आत्मा ही एक आत्मिक स्वधर्म है क्योंकि आत्मिक भाव आत्मा की निर्मलता में होता है और मायिक भाव का अभाव करके होता है। अन्य मजहब संसार चक्र में घुमाने वाले होने से दुःख रूप हैं। मायिक धर्म भी जो मायिक भाव से हटाने वाला और आत्मा की तरफ रुचि उत्पन्न कराने वाला हो, वह मायिक ऐश्वर्य्य वाले धर्म से अच्छा कहा जाता है क्योंकि उसका आशय शुद्धात्मा जो व्यापक, अखंडित और सर्वोच्च है, वह होता है।

मायिक क्रिया समय पाकर फल देने वाली होती है, उसमें क्रम की भी आवश्यकता है। यदि क्रम की गड़बड़ हो जाय तो फल नहीं होता। इसमें देश काल भी अनुकूल होना चाहिये। यदि किसी प्रकार उसमें न्यूनाधिक हो जाय

तो भी फल नहीं होता। जैसे जमीन में डाला हुआ बीज अपनी ऋतु में ही फल देता है, योग्य जमीन हो तभी अंकुर उपजता है यानी जब देश, काल, ऋतु, धूप, छाया, पानी रक्षा आदिक संपूर्ण साधनं युक्त होता है तब ही बीज फल देता है। सब मजहबों की क्रिया और उपासना में भी यही नियम है। स्थूल क्रिया कर्म कही जाती है और सूक्ष्म—मानसिक क्रिया उपासना कहलाती है। दोनों ही कर्म स्वरूप हैं। जो जो कर्म साध्य—कर्मोत्पादक फल हैं उन सबमें ही उपरोक्त नियम की आवश्यकता है परन्तु ज्ञान में यह नियम नहीं है। उसमें क्रिया—कर्म की आवश्यकता न होने से किसी नियम की आवश्यकता नहीं है क्योंकि ज्ञान फल रूप से किसी से उत्पन्न होने वाला नहीं है। ज्ञान स्थूल क्रिया नहीं है, उसे मानसिक क्रिया भी नहीं कह सकते। जो उसे मानसिक क्रिया कहते हैं, वे उसे न समझ कर ही ऐसा कथन करते हैं। हम जिस आत्मबोध को कहते हैं, वह मानसिक क्रिया नहीं है क्योंकि वह अपने स्वरूप का बोध है। अपने बोध में क्रिया की आवश्यकता नहीं है। अबोध का हटना क्रिया रूप उपाय साध्य भले हो परन्तु बोध क्रिया साध्य नहीं है क्योंकि जो अखंडित और नित्य है, उसे कोई क्रिया उत्पन्न नहीं कर सकती। इसी कारण ज्ञान में कोई क्रिया नहीं है, क्रिया नहीं तो कर्म भी नहीं है, वह प्रत्यक्ष है

और तत्क्षण फल स्वरूप है। बोध होते ही आनन्द स्वरूप का भान होता है। जैसे अंधेरे आदिक में दोष से पड़ी हुई रस्सी को सर्प समझ कर जो डरना है वह भ्रांति से है। जब रस्सी का ठीक ज्ञान होता है तब भ्रांति में हुआ डर क्षण भर भी नहीं टिकता, इसी प्रकार ज्ञान का फल है। स्वरूप के ज्ञान यानी आत्म रहस्य का बोध होते ही अनेक जन्मों के अदृश्य और सूक्ष्म सब पापों की निवृत्ति हो जाती है, मुक्ति का आनन्द उसी क्षण से होता है और अखंडित रहता है। शरीर रहते हुए ही मोक्ष सुख का अनुभव होता है। यह ही वेदान्त रहस्य में सब से विशेषता है। व्यवहारिक सब कामों में कामना होने से बाधा होने का भी संभव होता है। स्वबोध में व्यवहार और मायिक पदार्थों से सम्बन्ध नहीं है, उनकी कोई कामना नहीं होती इसलिये बाधक नहीं हो सकते। जिस मुमुक्षु को व्यवहार आदिक ज्ञान में मालूम होता है वह उत्तम मुमुक्षु नहीं है, न दीखती हुई भी उसकी कामनायें गहराई में पड़ी हुई होती हैं। सच्चे विवेक वाले को कोई बाधा नहीं है। प्रारब्ध का बोध भी स्वबोध में बाधक नहीं है। सामान्य मनुष्यों को वह बाधक दीखता है परन्तु वास्तविक में बाधक नहीं है क्योंकि प्रारब्ध स्थूल भोग का होता है और स्वबोध तो स्थूल, सूक्ष्म दोनों से रहित है। यदि मुमुक्षु दशा में मुमुक्षु को बोध सूक्ष्म—मानसिक मालूम

होता हो तो भी स्थूल प्रारब्ध के भोग सूक्ष्म बोध को परास्त नहीं कर सकते, क्योंकि स्थूल का बाधक, उससे विरुद्ध दूसरा स्थूल ही हो सकता है। इसी प्रकार सूक्ष्म में भी उससे विरुद्ध स्वभाव का सूक्ष्म ही रोकने वाला हो सकता है इसलिये स्थूल प्रारब्ध जब मानसिक में ही बाधक नहीं है तो स्वबोध जो मायिक स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों से विलक्षण स्वरूप है, उसमें किस प्रकार बाधक हो ! 'हमारा प्रारब्ध अनुकूल न होने से हम बोध नहीं कर सकते' यह कहना कहने वालों की दुर्बलता है। ऐसे वाक्यों के कहने से सिद्ध होता है कि इस प्रकार कहने वाला पूर्ण रूप से माया से हटने को तैयार नहीं है।

एक बड़े भारी शहर में एक साहूकार रहता था। देशावरों में उसकी बहुत कोठियां थीं और इस समय में वह सब से विशेष श्रीमान् समझा जाता था। कोई चालीस वर्ष की उसकी उम्र होगई थी। वह स्वभाव से हंसमुख, नीतिवान् और धर्मात्मा था, छोटे, बड़े नौकरों, गुमाश्तों और लड़कों तक के साथ सामान्यता से वर्तता था। सब उसे बहुत चाहते थे और ईश्वर के अवतार के समान समझते थे। संयोग वश इस अवस्था में जब कि उसे सब प्रकार का सुख था, उसको शरीर सम्बन्धी दुःख हुआ यानी उसे बहुत छींकें आने लगीं। प्रथम तो उसने समझा कि बलगम का फिसाद होगा, सर्दी होने वाली

होगी। कुछ दिन पीछे सर्दी तो थोड़ी होकर निवृत्त हो गई, छींकें आना बन्द न हुआ। अब उसे मालूम हुआ कि छींकों का आना सर्दी से नहीं है, कोई रोग हो गया है इसलिये वह छींकें मिटने का उपाय करने लगा। पैसे का टोटा था ही नहीं, एक डाक्टर की दवा करने लगा। कितने दिनों तक दवा की परन्तु छींकों का आना बन्द न हुआ, प्रथम से भी विशेष छींकें आने लगीं। दूसरे डाक्टर की दवा की, उससे भी आराम न हुआ। ज्यों ज्यों दवा होती जाय, त्यों त्यों छींकें बढ़ती जायं। वैद्य और हकीमों का इलाज भी कराया गया परन्तु साहूकार का रोग किसी से भी निवृत्त न हुआ। छः मास में दस बारह हजार रुपया खर्च हो गया। अब उसकी हालत बिगड़ गई थी, वह कोई काम एकाग्रता से नहीं कर सकता था। क्षण क्षण में छींकें एकाग्रता को भंग कर देती थीं। बुद्धि विकल हो जाती थी। खाते, सोते, बैठते, उठते किंचित् भी चैन नहीं था। न तो व्यापार धन्धे में ही बुद्धि काम देती थी, न कुछ भजन भाव ही हो सकता था। वह बारम्बार अपने रोग को धिक्कारता, अपने प्रारब्ध की निन्दा करता और शांति चली जाने से सब पर कुढ़ा करता था। बहुत छींकों के कारण कभी कभी बुखार भी हो आता था। इस प्रकार वह बहुत ही दुःखी था। उसने इलाज कराना छोड़ा नहीं था। दूर दूर देशों में जो अच्छे अच्छे वैद्य, हकीम अथवा

डाक्टर सुने जाते थे उन सवके पास गया, मन माने दाम खर्च किये परन्तु रोग निवृत्त न हुआ। यह रोग क्या था? वैद्यकीय परीक्षा का एक महान् प्रश्न था! जिसमें अभी तक सब फेल ही होते जाते थे। अन्त में एक ने कहा कि मुम्बई में चले जाओ, वहां एक अमेरिकन डाक्टर बहुत हुशियार आया है, आपका रोग उसकी दवा से अवश्य चला जायगा। साहूकार ने उसकी बात मान ली और गुमाश्ते, नौकरों को साथ लेकर वह मुम्बई पहुँचा। मुम्बई में उस डाक्टर की बहुत प्रशंसा सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और एक हजार रुपये की एक थैली लेकर डाक्टर साहब के पास पहुँचा। थैली भेट की और अनेक प्रकार से विनती करके कहा "डाक्टर साहब! छींकों की बिमारी से मेरा दम नाक में आ गया है, क्षण भर भी मुझे चैन नहीं पड़ता, आपका बड़ा नाम सुनकर आपके पास आया हूं।" डाक्टर ने आश्वासन दिया और यन्त्र द्वारा मुख, नाक आदिक सब शरीर को देखा और छींकों के आने का कारण निश्चय किया। यह लोगों के दवा लेने आने का समय था, बहुत से बीमार बैठे हुए थे, ऐसा देख डाक्टर ने साहूकार से कहा "आप शाम को चार बजे आइये।" सेठ ने कहा "क्या मेरी बीमारी मिट जायगी? क्या आप चार बजे दवा देंगे?" डाक्टर ने कहा "बीमारी अवश्य मिट जायगी! इसका इलाज मैं चार बजे करूंगा!" साहू-

कार बोला "कितने दिन में आराम हो जायगा ?" डाक्टर हंसता हुआ बोला "इसमें दिनों का क्या काम है ? चार बजे ही तुमको आरोग्य करके भेज दूंगा !" साहूकार प्रसन्न होता हुआ और आश्चर्य्य करता हुआ मुकाम पर आया। शाम के चार बजे साहूकार डाक्टर के पास पहुंचा। डाक्टर उसे एक एकांत कमरे में ले गया। वहां ले जाकर उसने उसे ठीक रीति से लेटाया और एक कैंची लेकर उसके नाक के बाल जो बढ़ गये थे, काट डाले और साहूकार को उठा कर कहा "चले जाइये, आपकी बीमारी चली गई है !" साहूकार ने देखा कि बाल काटने के बाद एक भी छींक न आई, प्रसन्न होकर वह चलने लगा। एक नौकर जो उसके साथ था, कहने लगा "सेठजी ! आपने हजार रुपये क्यों दे दिये ? उसने तो कुछ भी काम नहीं किया, न दवा दी !" सेठ बोला "बुद्धि की विशेषता है, बुद्धि से उसने हजार रुपये लिये हैं, इसकी बुद्धि के सामने हजार रुपये कुछ भी नहीं हैं ! परिश्रम का फल नहीं होता, बुद्धि का ही विशेष फल होता है।"

अब विचारना चाहिये कि साहूकार को क्या रोग हुआ था, कोई भी रोग नहीं हुआ था। जो श्वासोश्वास नियमित रीति से चलता था, उसमें कोई रोग नहीं था, जठराग्नि बिगड़ी नहीं थी, श्वास चलने के मार्ग में बाल बढ़ जाने से रुकावट हो गई

थी। इस रुकावट के कारण श्वास कठिनता से चलने से छींकें आती थीं। यदि श्वास में विगाड़ा होता और उस से छींकें आती होतीं तो रोग समझा जाता, जिसकी निवृत्ति औषधि आदिक पीने की क्रिया से होती। कैंची से वाल काट देना ऊपर से क्रिया दीखती है परन्तु वह वाल काटने के निमित्त ही है। वाल कट जाने से जिस रुकावट के कारण छींकें आती थीं, वह रुकावट बन्द हो जाती है। श्वास की क्रिया में कोई विगाड़ न था, बाल कटने के वाद् सुधार होगया। इसी प्रकार ज्ञान को—आत्म बोध को समझना चाहिये। उसमें किसी प्रकार का विगाड़ नहीं है। जैसे नाक में वाल वढ़ जाने के कारण छींकों के साथ अशांति हुई थी इसी प्रकार आसक्ति, कामना आदि वाल वढ़ जाने से, समान रूप का जो आत्म तत्त्व है, उस की समानता में तो अवरोध नहीं है, किन्तु श्वास वहन मार्ग में है, इसी अज्ञान से जगत् के दुःख हैं। अवरोध रूप अज्ञान को काटना क्रिया रूप है परन्तु आत्म बोध क्रिया साध्य नहीं है। जैसे बाल काटते ही बहुत समय का रोग क्षण भर में निवृत्त हो गया इसी प्रकार अज्ञान कट जाने से अनेक जन्मों का लगा हुआ जन्म मरण रूप रोग क्षण भर में निवृत्त हो जाता है। यह ही ज्ञान का प्रत्यक्ष फल है। ज्ञान का प्रत्यक्ष प्रथम नहीं था, अब नया उत्पन्न हुआ हो, ऐसा नहीं है, वह तो हमेशा प्रत्यक्ष ही

है, उसे अप्रत्यक्ष करने को किसी की सामर्थ्य नहीं है। प्रत्यक्ष होता हुआ भी अज्ञान से अप्रत्यक्ष के समान प्रतीत हो रहा है, यह ही दुःख है। जैसे श्वास के उत्पत्ति लय स्थान में कोई विकार न था, न उससे छींकों का सम्बंध था, छींकें बाह्य प्रदेश में थीं, आंतर में न थीं इसी प्रकार आत्मा का अज्ञान और जगत् से कुछ सम्बंध नहीं है न वस्तु रूप से दोनों का मेल है इसी कारण आत्मा अखंडित ज्ञान स्वरूप कहा जाता है। साहूकार के रोग के समान जगत् का महान् रोग दीखता हुआ भी वास्तविक में है नहीं और है ऐसा मानने वालों का क्षण भर में ही निवृत्त हो जाता है। बाल काटने में कोई अवरोध नहीं है, न विक्रिया होने का सम्भव है क्योंकि बाल बहुत मुलायम होते हैं, ऐसे ही बालों के समान जगत् प्रतीति मात्र है—मालूम होता है। विवेक और वैराग्य दो फनें वाली कैंची से जगत् के दुःख कट सकते हैं। ऊपर के दृष्टान्त में साहूकार जीव है, छींकों का आना जगत् के दुःख हैं। बालों का बढ़ जाना वासनाओं का बढ़ जाना है। अनेक वैद्य, डाक्टर, हकीम द्वैतवादी गुरु शास्त्र हैं। वे आराम नहीं कर सकते। बाल काटने वाला डाक्टर सद्गुरु है।

वेदान्त तत्त्व यानी ब्रह्म को अद्वैत कहकर समझाया जाता है परन्तु वह अद्वैत है, ऐसा न समझना चाहिये

क्योंकि द्वैत और अद्वैत एक दूसरे से विरुद्ध और आपेक्षिक हैं। एक से दूसरे की सिद्धि होती है। जब द्वैत कहा जाता है तब अद्वैत उसके विरुद्ध पक्ष का है, ऐसा समझते हुए समझा जाता है यानी नकार के भाव से भी द्वैत भाव ही रहता है। द्वैत दो को कहते हैं। सब संसार दो का विस्तार रूप जो अनेक प्रकार का है, वह द्वैत है। द्वैत नहीं है, ऐसा अर्थ अद्वैत का होता है यानी जहां दो अथवा दो का विस्तार नहीं है, उसे अद्वैत कहते हैं। ऐसा अद्वैत एक है यानी एक को अद्वैत और दो को द्वैत कहते हैं। इस प्रकार द्वैत के नकार भाव से अद्वैत परब्रह्म है, ऐसा न समझना चाहिये क्योंकि द्वैत और अद्वैत दोनों का बोध माया में ही होता है। जिसका बोध माया में ही होता है, ऐसा अद्वैत ब्रह्म नहीं है। प्रपंच को सब भावों सहित हटाने को यानी अज्ञान को समूल हटाने के निमित्त द्वैत का निषेध किया है, अद्वैत को निषेध रूप नहीं कहा है, वस्तु का निषेध न समझना चाहिये। वास्तविक जो द्वैत, अद्वैत से विलक्षण है, जिससे और जिसमें द्वैत और अद्वैत दोनों सिद्ध होते हैं, उस अनाद्यन्त तत्त्व—ब्रह्म को समझने के लिये ही अद्वैत कहा है। अद्वैत से एक ऐसा भी न समझना चाहिये क्योंकि उसमें एक अथवा अनेक की संज्ञा नहीं है। जब समझाया जाता है तब द्वैत में ही कथन करना पड़ता है; लक्ष्य पहुंचाने को अद्वैत कहा जाता है।

जैसे ब्रह्म, परमतत्त्व आदिक शब्द समझाने के निमित्त हैं, इसी प्रकार अद्वैत शब्द भी समझाने के निमित्त कहा गया है। वह अद्वैत किस प्रकार का है, कैसा है, इसका पूर्ण बोध अनुभव से ही होता है क्योंकि वह बोधगम्य तत्त्व है। इस प्रकार परब्रह्म और आत्मा की एकता करते हुए जो बोध होता है, उसके निमित्त सब प्रक्रियाओं, उपासना और उपदेश को भी समझना चाहिये। शब्द-शब्द के निमित्त नहीं है, बोध के निमित्त है ऐसे ही उपासना उपास्य के निमित्त नहीं है परन्तु आत्मा के निमित्त है यानी अविचल तत्त्व अपने स्वरूप के बोध के निमित्त है। जैसे अनेक प्रकार के शब्द जो बोध के सहारा रूप समझे जाते हैं इसी प्रकार ब्रह्म के सब नाम, गुण, विशेषण, उपासना और युक्तियों को समझो। बोध के बाद ये सब मायिक और तुच्छ हैं, ऐसा निश्चय होता है। जैसे जब कोई मकान बनाता है तब उसमें बल्ली आदिक के झूठे खम्भे मदद रूप लगाये जाते हैं, इसी प्रकार उपासना आदिक को शुद्धि के हेतु समझो। वे प्रधान नहीं हैं, परम्परा बोध का साधन रूप हैं। बोध का मुख्य साधन ज्ञान ही कहा गया है।

यदि कोई मनुष्य ज्ञान प्राप्ति के निमित्त अन्तःकरण की शुद्धि करने में लग जाय यानी निष्काम कर्मयोग में प्रवृत्त हो, ज्ञान के अधिकारी के लक्षण प्राप्त करने का

प्रयत्न करे और श्रवण मनन आदिक में लगे, परन्तु इस प्रकार के प्रयत्न से पूर्ण शुद्धि और स्वरूप का बोध न हो तो भी शुद्धि के लिये किया हुआ प्रयत्न निष्फल नहीं जाता, उसके संस्कार नाश नहीं होते किन्तु समय पर वे संस्कार उत्पन्न होकर चली हुई चाल से वह आगे चलेगा यानी अपूर्ण रही हुई शुद्धि के कार्य को समाप्त करके बोध प्राप्त कर लेगा। कोई भी आरम्भ किया हुआ शुभ अथवा अशुभ कर्म पूर्ण न हो तो भी उसके संस्कार सूक्ष्म में पड़ जाते हैं और समय पाकर वे ही संस्कार उस कार्य को पूर्ण कराते हैं। जब संसार की चाल के संस्कार ही नहीं रुकते तब इससे विशेष श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्ति की तरफ ले जाने वाले संस्कार क्यों रुकेंगे? बोध का होना कुछ कठिन नहीं है! अपना ही बोध करना है इसलिये इतना सुलभ और कोई नहीं हो सकता तो भी तुच्छ बुद्धि वाले आत्म बल हीन स्वबोध को प्राप्त न कर सकें तो भी उन्हें ज्ञान प्राप्ति के प्रयत्न में अवश्य लगना चाहिये। प्रपंच की वृद्धि के संस्कारों से प्रपंच निवृत्ति रूप स्वबोध होने के संस्कारों में विशेष तेजी रहती है। वे संस्कार शुभ कर्मों के फल से भी श्रेष्ठ समझे जाते हैं क्योंकि उन संस्कारों का भाव वैराग्य के कारण संसार की वृद्धि रूप नहीं है। यदि ऐसा कोई संसार से निवृत्त न भी हो तो भी उसका भाव उच्च होने

से वह स्वर्गादि में जाने वाले पुण्य कर्म वाले लोगों से श्रेष्ठ है। उसके पूर्व के अज्ञान के संस्कार भी जन्म लेने के बाद बोध की तरफ परवश खिच जाते हैं इसी कारण बोध के निमित्त प्रयत्न करने में किसी को चूकना न चाहिये। प्रयत्न की सफलता से जीव मुक्ति के आनन्द का भागी होता है और निष्फल जाय तो अन्य जन्म में सब से श्रेष्ठ महात्मा होकर मुक्त होता है। किसी प्रकार उसका अहित नहीं होता। प्रयत्न करते हुए ज्ञान प्राप्त न हो तो भी उस मनुष्य को मनुष्य जन्म का अर्थ सार्थक हुआ ही समझना चाहिये क्योंकि अब वह गिरने वाला नहीं है परन्तु ऐसे का जो दूसरा जन्म होता है, वह महा दुर्लभ जन्म होता है क्योंकि पूर्व संस्कारों से उसका यह जन्म अन्तिम जन्म होता है। 'सर्व वासुदेव मय है' उसे ऐसा स्पष्ट बोध होता है। वह सब ज्ञानियों को भी वंदना करने योग्य है। उसका ही ठीक रीति से वेदान्त रहस्य—ब्रह्म स्वरूप में पूर्ण टिकाव होता है, ज्ञान भूमिका वह पूर्ण अनुभव लेता है।

वेदान्त तत्त्व व्यापक होने से बोधके साथ ही परमानंद रूप फल वाला होता है। बोध और फल के बीच में अंतर नहीं है। जो फल कर्म और उपासना से उत्पन्न होने वाला होता है उसमें क्रिया की समाप्ति और फल की प्राप्ति के बीच में अन्तर होता है। कितनेक कर्म और उपासना की

क्रिया और उसके फल के बीच में कई जन्मों का अन्तर होता है परन्तु आत्म बोध में ऐसा नहीं है। जो क्रम और उपासना आदिक के कर्म पृथक् भाव से किये जाते हैं, उनका फल पृथक् भाव से ही प्राप्त हो, जब ऐसे फल के भाव रूप योग को करते हैं, तब योग से कर्म भाव के संस्कार उत्पन्न होते हैं। जब वे संस्कार दृढ़ हो जाते हैं तब वासना रूप होते हैं और वासना जब पक जाती है तब फल देने के निमित्त प्रारब्ध रूप अदृश्य बनता है, जब उसका समय आता है तब वह फल देता है। इसमें भी फल तब ही होगा जब इस क्रम में किसी प्रकार की बाधा न पहुँचे। तत्त्व बोध आत्मा का ही होने से और आत्मा सर्व व्यापक होने से और आत्मा के सामने अन्य कोई विघ्न करने की शक्ति वाला न होने से बोध के साथ ही कृतार्थता रूप फल की प्राप्ति होती है। यह वेदान्त की कर्म फल से अलौकिक विलक्षणता है। जो जल्दी फल देने वाला होता है, उसे ऐसा कहते हैं:—इस हाथ से दो, उस हाथ से लो! वेदान्त तत्त्व में इतना भी विलम्ब नहीं है। आत्म बोध जीते जी फल देने वाला है। बोध का फल भोगने के लिये स्वर्गादिक में मर कर जाने की आवश्यकता नहीं है, वर्तमान शरीर में ही फल होता है और शरीर के बाद भी; शरीर बूढा हो, जवान हो, रोगी हो, निरोगी हो, अकेला हो या सबके समुदाय में हो, ऊंच

जाति हो या नीच जाति हो, फल में किसी प्रकार की रुकावट नहीं होती यानी वेदान्त रहस्य जीते जी अखं-डित परमानन्द रूप फल के प्राप्त करने की अपनी (आत्मा की) विद्या है। जिसको कर्म द्वारा स्वर्ग के सुख-ऐश्वर्य का फल होता है उसे मनुष्य शरीर में स्वर्ग के भोग नहीं हो सकते, उनके भोग के लिये उसे स्वर्ग में ही जाना पड़ता है और स्वर्ग सुख क्रिया के समान हद वाला है, समाप्ति के बाद वह सुख चला जाता है। परमानन्द की प्राप्ति का तो कभी नाश नहीं होता, एकसमय प्राप्त हुआ, अखंडित रहता है। स्वर्ग सुख भोगने को जाने वाले के समान परमानन्द के लिये ज्ञानी को शरीर का त्याग करना नहीं पड़ता। सब अवस्था, सब स्थिति और सब देश काल उसके लिये अनुकूल ही होते हैं। स्वर्ग में सुख भोगने वाले आपस में ईर्षा से जलते रहते हैं। स्वर्ग का अधिपति इन्द्र भी 'मेरा पद कोई और तपस्वी छीन न ले' इस चिंता में रहता है परन्तु परमानन्द से न कोई ईर्षा करता है, न किसी का पद भ्रष्ट होने की चिंता रहती है। उसमें कभी भी विघ्न नहीं होता इसलिये परमानन्द निर्विघ्न है। जैसी स्वर्ग में स्वार्थ हानि की चिंता रहती है, ऐसी बोध स्वरूप वाले ज्ञानी को नहीं रहती। इन अनन्त गुणों से वेदान्त रहस्य का नाम राज विद्या, महा विद्या, अखंडित सुख की विद्या है।

सब धर्मों का एक पूर्ण धर्म, सब मज़हबों का एक पूर्ण मज़हब, सब शास्त्रों का एक महान् शास्त्र और सब ब्रह्मांड का आत्मा एक सच्चिदानंद, व्यापक तत्त्व वेदान्त रहस्य है। इस तत्त्व से ही सृष्टि, स्थिति और लय होता है और उसी में होता है। वह ही सब का आधार और अविकारी आद्य स्वरूप है। इस तत्त्व के सिवाय ऐसा सत् तत्त्व कोई है ही नहीं तो उसके बराबर का या उससे विशेष कहां से होगा? सब का अधिष्ठान होने से वह सब से महान् है और अज्ञानियों की समझ में नहीं आता इससे छोटे से-छोटा और आत्मस्वरूप होने से बहुत सूक्ष्म है। कोई भी मायिक पदार्थ उससे सूक्ष्म नहीं है क्योंकि वह सब में ही आत्मस्वरूप से स्थित है। वेद जब दूध रूप और उपनिषद् मक्खन रूप है तब वेदान्त तत्त्व घी रूप है। जब शास्त्र वाणी रूप है तब वह वाणी का आत्मस्वरूप वक्ता है। मजहब एक प्रकार का वरंडा बांध कर टिके हुए हैं इससे वे हद में हैं हद वाले हैं और परतंत्र हैं। आत्म मजहब का कोई वरंडा नहीं है, वह किसी हद में घिरा हुआ नहीं है, अपना स्वरूप होने से बेहद और स्वतंत्र है, सब का सार सब का पूर्ण तत्त्व वही है। शरीरादिक की हद में रहे हुए बेहद को जो जानता है वह ही ज्ञाता कहा जाता है। जिसकी कामना से अनेक प्रकार की तपश्चर्या और ब्रह्मचर्या आदिक साधन किये जाते हैं, जिसकी

कामना से ब्रह्मांड भर का ऐश्वर्य तुच्छ समझा जाता है, जिसकी कामना से व्यक्ति भाव का भी विनाश कर दिया जाता है वह ही वेदान्त रहस्य सब कामनाओं का पूर्ति रूप महान् समुद्र है। अज्ञानियों को वह पर्वत के समान महान् दुस्तर है, मुमुक्षु को तिल की ओट पहाड़ के समान है और ज्ञानियों को प्रत्यक्ष अपना आप है। वह सब दुःखों की निवृत्ति रूप है परंतु माया के परदे से विपरीतता भास रही है। माया में ही अपनी और अपने स्वरूप की पहिचान नहीं रहती।

चेतसिंह नाम का एक राजा था, शीलवती उसकी रानी थी। दोनों में अपूर्व प्रेम था। एक दिन रानी राजा से कहने लगी "महाराज! मेरे स्वभाव में परिवर्तन हो गया है मुझे चैन नहीं है ऐसी इच्छा होती है कि नाव में बैठकर जल यात्रा करूं तो अच्छा हो!" शीलवती इस समय गर्भवती थी, राजा ने उसकी इच्छा पूर्ण करने का विचार किया। एक दिन शामको राजा रानीको साथ लेकर नौकामें बैठा और मल्लाहों को नाव चलाने की आज्ञा दी। नाव चलने के थोड़ी देर बाद हवा का रंग पलट गया। शांत हवा चलना बंद हो गया और उसके बदले प्रचंड वायु जोर से चलने लगा। साथ ही इधर उधर से बादल एकत्र होगये और मूसलाधार पानी पड़ने लगा! मल्लाह घबरा गये। नाव को बीच में से किनारे पर लाने का उन्होंने बहुत प्रयत्न किया परन्तु

नाव टूट न सकी और जल की भारी तरंगों से उछलने लगी। नाव के टूटने की नौबत आ गई। 'टूटी अब टूटी' हो रही थी। इस प्रकार हवा का स्वरूप देख कर रानी बहुत घबराई। राजा को भी रानी के गर्भपात होने की शंका हुई। एक भारी हिलोरा आया, नाव उसके साथ खिंचती हुई चली और एक भारी खड़क से टकरा कर टूट गई और उसमें भक २ करता हुआ जल घुस गया। सबकी जान पर आ बनी थी। भारी तूफान और टूटी हुई नाव में से ईश्वर ही बचावें तो बच सकते हैं, ऐसा सोचकर सब ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे, इतनेमें एक और भारी हिलोरा आया और नाव टूट गई! जिसको तैरना आता था, वह प्रयत्न करके तैरने लगा और अपने बचने की चेष्टा करने लगा। राजा रानी और मल्लाह सब अलग २ बहने लगे। राजा किनारे पर न आ सका। रानी को नाव की एक टूटी हुई पटरी हाथ लग गई, वह उस पर बैठ गई। पटरी बहती २ बहुत दूर चली गई। समुद्र के समीप एक जंगल था, वहां रानी पटरी पर से उछल पड़ी और कितनी ही देर तक बेहोश पड़ी रही। जब सूर्य की धूप लगी तब उसे होश आया। वह वहां बैठी हुई दो दिन तक रोती रही और रोते २ थक कर तीसरे दिन जंगल में चल पड़ी। वहां कोई मनुष्य नहीं रहता था और जंगली जानवर भी न थे। चारों तरफ वृक्षों से घिरा हुआ शून्याकाश ही

दिखाई देता था। इस जंगल में रानी ने पर्ण कुटी बना कर निवास किया, जंगल में से वनफल लाकर उनका आहार कर के वह अपने दुःख के दिन व्यतीत करने लगी इस प्रकार कितनेक दिन व्यतीत हुए, गर्भके नव मास पूर्ण हुए, रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया। जिस राज पुत्र के जन्म समय भारी आनंदोत्सव होता है, उस कुंमार को एक चुल्लू पानी देने के लिये भी कोई स्त्री रानी के पास न थी। रानी की सेवा करनें को एक भी दासी न थी ! रानी ने अपने हाथ से ही कुमार को स्नान कराया, पत्रों की शैया करके सुलाया और जल के स्थान पर कपड़े धोने को गई !

इस समय नदी में से कामभद्र नामक एक राजा की नाव जा रही थी। रानी को देखते ही कामभद्र मुग्ध हो गया, किनारे पर उतर आया और अपने मनुष्यों से बलात्कार रानी को उठवा कर नौका में बैठा कर चलता हुआ। रानी ने अपने कुमार को लेने की बहुत प्रार्थना की परन्तु कामभद्र ने एक न सुनी। रानी विल्लाप करने लगी "हाय दैव ! तूने क्या किया ! राजकुमार का क्या हाल होगा ? तुरन्त का जन्मा हुआ घोर अरण्य में पर्णकुटी में निराश्रय पड़ा है, वहां उसे दूध पिलाने वाला और संभाल करने वाला कोई नहीं है। हाय ! अब उसका क्या होगा ! वह किस प्रकार जियेगा ? कामभद्र ने रानी के विल्लाप

की कुछ परवाह न करके उसे ले जाकर अपने अन्तःपुर में रखा। वह अन्तःकरण से रानी को चाहता था। उसने उसे बहुत समझाया, भय भी दिखाया, करुणा करके याचना भी की परन्तु रानी ने न माना। कामभद्र उसे अपनी रानी बनाना चाहता था और वह पति पुत्र के वियोग में दुःखी थी, सूखी लकड़ी के समान हो गई थी। जब रानी ने न माना तब कामभद्र ने उसे कैद कर रखा। इस प्रकार दश वर्ष व्यतीत हो गये।

उस जंगल में तुरन्त का जन्मा हुआ राजकुमार जहां पड़ा हुआ था वहां एक कपिला गौ आई। उसने कुमार के मुख में अपने आंचल से दूध पिलाया। इस प्रकार प्रति दिन वह गौ राजकुमार को दूध पिलाती रही, दिन, मास, वर्ष व्यतीत होने लगे। कुमार घुटनों पड़ने, बैठने और चलने लगा, इस प्रकार सात वर्ष का होकर वह जंगल के फल खाने लगा। अभी तक राजकुमार ने गौ सिवाय किसी मनुष्य या प्राणी को नहीं देखा था। अब वह जंगल में इधर उधर घूमने लगा था। एक दिन उसने एक सारस के बच्चे को देखा। उसे उठा कर वह अपनी कुटी में ले आया और फलादिक खिलाने लगा। गौ का दूध और बनफल खा खाकर सारस का बच्चा बढ़ने लगा, थोड़े दिनों में वह एक बड़ा सारस हो गया। राजकुमार और सारस दोनों आपस में बहुत प्रेम रखते थे। एक दिन राजकुमार

सारस की पीठ पर चढ़ा, सारस उसे लेकर उड़ने लगा। इस प्रकार राजकुमार सारस पर सवारी करना सीख गया। सारस उसे बहुत दूर तक ले जाता और फिर स्थान पर लाकर उतार देता था। अब राजकुमार दूर दूर जाने लगा, कभी पार के शहर में सैर करने चला जाता वहां उतर कर पैदल भी सैर करता परंतु वह गूँगे के समान था, उसे गौ और सारस की भाषा मालूम थी मनुष्य की भाषा नहीं जानता था इसलिये उस भाषा के सीखने तक उसे बहुत कठिनाई पड़ी। बारबार शहर में आकर घूमने से उसे थोड़ी भाषा मालूम हो गई। जब उसे कुछ व्यवहारिक ज्ञान हुआ तो उसे विचार होने लगा कि मेरे माता पिता होने चाहिये और वे कहां होंगे? एक दिन उसने सारस से कहा कि जहां मेरी मां हो, उस देश में मुझे ले चल। सारस उसे जहां रानी कैद थी, वहां ले गया। सारस को एक स्थान पर छोड़ कर राजकुमार घूमने लगा। अंतःपुर की एक दासी उसे मिली और कहने लगी "हे रूपराशि राजकुमार! तुम यहां कहां से आये हो, कहां के रहने वाले हो और तुम्हारे यहां आने का क्या प्रयोजन है?" कुमार बोला "हे बाई! मुझे यह मालूम नहीं है कि मेरे माता पिता कौन है, अभी जानने में आया है कि मेरी मां इस शहर में है! मैं एक जंगल में रहता हूँ।" रानी ने अपनी सब बीती हुई बातें दासी को सुना रक्खी थीं और जंगल

का वृत्तांत भी कह दिया था। वह समझ गई कि यह कैद की हुई रानी का पुत्र है, दासी कहने लगी "हां ! हां ! मैं समझ गई ! राजा के अंतःपुर में एक जंगल में से आई हुई रानी कैद है। आप उसके ही पुत्र होंगे ! मेरे साथ चालिये, मैं आपको समय देखकर चुपके से आपकी मां के पास ले जाऊँगी।" यह कह कर दासी राजकुमार को अपने घर ले गई और सब बातें रानी से जाकर कह कर मार्ग में खड़े हुए राजकुमार को दिखलाया। अन्तःपुर का चौकी पहरा बहुत मज़बूत था। वहां राजकुमार को ले जाना और रानी को निकाल देना कठिन था। दासी ने एक युक्ति की। एक दिन वह रानी को कारागार में से छत पर स्नान कराने ले गई, उसके साथ दो दासियां और भी थीं। रानी को स्नान कराने की तैयारी हो रही थी इतने में राजकुमार सारस पर बैठकर छत पर आ गया, जब सारस छत पर आ रहा था तब चतुर दासी ने और दासियों को भय दिखलाया। दोनों दासियां भाग गईं। राजकुमार ने सारस के ऊपर से उतर कर कहा "माताजी ! तुम इस सारस पर बैठ जाओ, जहां यह तुमको ले जायगा, वहां मैं भी आ जाऊँगा !" रानी ने उसे छोड़ कर जाने की मने की परन्तु और कोई उपाय न था, इसलिये वह सारस पर बैठ ली। सारस ने रानी को राजकुमार के स्थान पर

में ला उतारा और फिर वह राजकुमार को लाने के लिये उड़ा। चतुर दासी राजकुमार को अपनी बहिन का लड़का बता कर अन्तःपुर से अपने घर ले गई। सारस वहां आ गया, राजकुमार उस पर बैठकर अपनी पर्णकुटी में आ गया। माता और पुत्र मिले। रानी ने कहा "हे पुत्र! यहां से उत्तर दिशा में तेरे पिता का देश है। जिस देश में श्वेत पताका उड़ रहा हो, उसे अपने पिता का देश समझना, तू वहां जा और देख कि तेरा पिता मुझे याद कर रहा है या भूल गया है। जो उसने अन्य रानी से प्रेम कर लिया हो तो मुझे वहां जाना उचित नहीं है, मैं अपनी आयु इस जंगल में ही पूर्ण कर दूंगी!"

राजकुमार खोज करता २ अपने पिता की राजधानी में पहुँचा। लोगों से मालूम हुआ कि इस राजा की रानी ही नाव में सैर करते हुए डूब गई थी। कुमार को निश्चय हो गया कि यह ही मेरे पिता की राजधानी है। इस समय राजा उद्यान में था और वहां अपनी प्रियतमा के साथ वार्तालाप कर रहा था। कुमार ने वहां जाकर राजा को प्रणाम किया और राजा की आज्ञा पाकर कहा "महाराज! आपकी रानी जो जल विहार करते हुए जल में डूब गई थी क्या आपको उसकी याद है? उस समय वह गर्भवती थी, क्या आप गर्भ के कुमार को पहिचान सकते हैं? (दूसरी रानी की तरफ़ देखकर) क्या यह

आपकी दूसरी रानी है ? क्या प्रथम रानी के डूबने के बाद आपने इससे लग्न कर लिया है ?" राजकुमार की इस प्रश्नावली से राजा स्तंभित हो गया ! उसकी समझ में न आया कि उसकी बात का क्या उत्तर दूं । नयी रानी हाथ पकड़ कर बोली । "चलिये महाराज ! अन्तःपुर में चलिये, यहां बहुत देर तक रहना ठीक नहीं है ।" राजा राजकुमार को करुणा दृष्टि से देखता हुआ नयी रानी के साथ चल दिया ।

राजकुमार अपनी मां के पास पहुंचा और जो दृश्य उसने देखा था वह सब कह सुनाया । रानी सुनकर नेत्रों में से आंसू गिराती हुई बोली "कुमार ! तेरा पिता मुझे भूल गया है, उसके पास अन्य रानी है, कंटकरूप होने को मैं वहां जाना नहीं चाहती, अब हम इस जंगल में ही रहेंगे, जब तक मैं जीती हूं तब तक तू मेरे पास रह ।" कुछ दिन बीतने के बाद एक साधु कुटी के पास आकर बैठा । जंगल में मनुष्य को देखकर रानी को आनन्द हुआ । रानी ने उस साधु को फल खिलाये । साधु प्रसन्न होकर एक कथा इस प्रकार सुनाने लगा:—"एक समय उत्तर देश का राजा गर्भवती रानी के साथ नौका में बैठ कर सैर कर रहा था, नौका टूट कर डूब गई, रानी एक पटरी के सहारे बहती हुई जंगल के किनारे पर पहुंची, वहां उसने राजकुमार को जन्म दिया । कामभद्र एक दुष्ट राजा पुत्र से वियोग करा-

कर रानी को अपने देश में ले गया। उसने पतिव्रता रानी को बहुत दुःख दिया, परन्तु रानी ने उसके साथ लग्न न की। राजपुत्र ने बड़े होकर बड़ी चतुराई से माता का उद्धार किया। वह अपने पिता के पास भी हो आया परन्तु उसका पिता मायावती के मोह में फँसा हुआ है और पतिव्रता पूर्व रानी को भूल गया है। अब वह उसे पहिचान नहीं सकता!" रानी बोली "महाराज! वह अभागिनी रानी मैं ही हूं! यह मेरा पुत्र विवेकचन्द्र है। क्या आप कोई ऐसा उपाय जानते हैं जिससे मेरा पति हमको पहिचान ले और रख ले! यदि आप जानते हों तो कृपा करके बतलाइये!" साधु बोला "हां! एक औषधि है!" रानी बोली "क्या वह औषधि आपके पास है? यदि है तो क्या आप हमको दे सकते हैं?" साधु बोला "औषधि मिल सकती है परन्तु उसमें पतिव्रता स्त्री के एक छटांक रक्त की आवश्यकता है, यदि वह मिल जाय तो औषधि बनने में विलम्ब नहीं है।" रानी ने अपने शरीर में से छटांक भर रक्त निकाल कर साधु को दे दिया। साधू ने औषधि बना दी और कुमार को देकर कहा "बच्चा! जिस समय यह औषधि मायावती के सामने रख दी जायगी, उसी समय वह मर जायगी! उसकी लीला के सब विस्तार का भी नाश हो जायगा! राजा तुझे और तेरी माता को आदर सहित अपने राज्य में ले जायगा,

तुझे युवराज बनावेगा ! ऐसा कहकर साधु चल दिया। राजकुमार सारस पर सवार होकर अपने पिता के पास पहुंचा। मायावती राजा के पास थी, उसने ज्यों ही राजकुमार को आते देखा त्यों ही क्रोध के मारे उसके नेत्र लाल हो गये। राजकुमार ने औषधि निकाल कर राजा रानी के सामने रख दी। औषधि को देखकर मायावती घबराती हुई भागने लगी परन्तु वह भाग न सकी, उसी क्षण मर गई। राजा का भ्रम निवृत्त हुआ। वह राजकुमार के साथ पर्ण कुटी में गया और सत्कार पूर्वक रानी को अपनी राजधानी में ले आया। उसने राजकुमारको पाटवी कुमार बनाया और अपना वृत्तांत इस प्रकार सुनाया "जब नौका टूटी तब मैं डूबता उछलता ज्यों त्यों करके किनारे पर आ लगा। वहां आकर मैंने मायावती को देखा, उसमें लुब्ध होकर मैं उसे ले आया और रानी बना कर उसके साथ रहने लगा, तुमको भूल गया, अब मैंने तुमको पहिचाना है !" इस प्रकार मिल कर वे सब आनंद पूर्वक रहने लगे।

माया के मोह में पड़ने से राजा अपनी पूर्व अवस्था की रानी और उससे जन्मने वाले राजकुमार को भूल गया और उन दोनों को पहिचान न सका। उसे कुछ सामान्य स्मृति आती थी तो भी मायावती के मोह के कारण वर्ताव नहीं कर सकता था मोह से ही वह माया का गुलाम बना था और उसकी बेड़ी में से छूटने को असमर्थ था।

जब गुरु कृपा ि ... गई तब
माया की निवृ ... ति आई।
वह पूर्व की पतिव्रत ... आ ... ला और
विवेक और शांति युक्त हुआ।

चेतसिंह राजा जीव है। उसकी रानी शीलवती शील है। शील शुद्ध सतोगुण वाला होता है। राजा का उससे प्रेम था। उस प्रेम का फल शीलवती के विवेक रूप पुत्र का गर्भ रहा था, वह विवेकचंद्र राजकुमार हुआ। जब राजा रानी क्रीड़ा करने गये तब उन दोनों का वियोग हुआ। क्रीड़ा संसार की क्रीड़ा थी, उसमें विषयों की हवा रूप तूफान से नौका डूब गई जिससे जीव और शील भिन्न २ हो गये उनका वियोग हो गया। शील जंगल में चला गया जीव उसका उपयोग न कर सका। शील ने एकांत स्थान रूप जंगल में विवेक रूप राजकुमार उत्पन्न किया। कामभद्र राजा काम था, जो शीलवती रूप शील को पकड़ ले गया। उसने उसे भ्रष्ट करना चाहा और उसके पुत्र विवेक को साथ लेने न दिया। शील ने काम का संग न किया और वह भ्रष्ट न हुआ। विवेक जंगल में निराधार था। कपिला गौ ने दूध पिला कर उसे बड़ा किया। कपिला गौ अनासक्ति रूप थी। अनासक्ति से विवेक वृद्धि को प्राप्त हुआ। जब विवेक बड़ा यानी दृढ़ हुआ तब उसने सार रस रूप सारस को पकड़ा, सारस ही प्रत्यगात्मा रूप

हंस है। उस पर सवार होकर विवेक उड़ने लगा, प्रत्यगात्मा की शक्ति से विचरने लगा, हंस दिव्य दृष्टि वाला होने से विवेक को उसकी माता शील के स्थान में ले गया। जो चतुर दासी मिली थी वह शील की दासी—सखी सुबुद्धि थी। सुबुद्धि की युक्ति से विवेक ने शील को बन्धन से छुड़ाया और उसे एकांत में ले गया। शील रूप रानी जीव से मिला चाहती थी परंतु स्वयं शील रूप होने से वह दूसरे को दुःख देना नहीं चाहती थी। विवेक ने अपने पिता चेतसिंह और अपर माता मायावती को देखा। मायावती माया थी जो शील के वियोग के बाद जीव को प्राप्त हुई थी। विवेक और शील के पुण्य प्रभाव से उन्हें सद्गुरु साधु मिला। उसने जो शील का छटांक भर रक्त मांगा था, वह अहंभाव था। उसकी औषधि बनाई गई थी। दवा का रहस्य यह है:—राजकुमार को दवा देकर साधु ने कहा था कि इसको राजा रानी के सामने रखना यानी उनसे कहना कि जब राजा रानी के साथ क्रीड़ा करने गया था तब रानी गर्भवती थी, राजा रानी का वियोग हुआ। वह राजा तू है (तत्त्वमसि) और जो गर्भ था, जिसने जन्म लिया था, वह विवेक स्वरूप तेरा पुत्र सो मैं हूं (अहं ब्रह्मास्मि) यह वेद के महावाक्य रूप औषधि थी। इस दवा से माया की निवृत्ति और जीव को अपनी पूर्व स्मृति हुई। यह वेदान्त रहस्य है।

आत्मा को जानना ही वास्तविक तत्त्व है। जो आत्मा को जानता है वह माया कृत जगत् में नहीं फँसता, माया की चतुराई उस पर नहीं चलती और माया का सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव भी उसका निवृत्त हो जाता है। जैसे सूर्य के सामने अंधेरा नहीं टिकता इसी प्रकार उसके सामने माया नहीं टिकती। जगत् के अनेक पदार्थों का ज्ञान बुद्धि के सहारे होने से आत्म ज्ञान के समान नहीं है। आत्मा स्वप्रकाश होने से आत्म ज्ञान आत्मा से ही होता है। उसके जानने, पहिचानने, उसका बोध होने को ज्ञान कहते हैं। आत्म ज्ञान वृद्धि और न्यूनता से रहित है, जिसको जानने के बाद अन्य कुछ जानना शेष नहीं रहे उसे आत्म ज्ञान कहते हैं। जो कुछ त्रिपुटी में जाना गया है, वह तुच्छ रूप होने से जाना हुआ भी आत्म स्थिति में न जाना हुआ ही है और जो मायिक पदार्थ न जाना हुआ है, वह सब जाने हुए के समान है। वेद का अर्थ जानना है और जानना ज्ञान है। अन्त आखिर को कहते हैं। जो जानने का अन्त कर दे, जिसको जानने के बाद अन्य कुछ जानने को न रहे उसका नाम अंत है। इस प्रकार वेद और अंत मिलकर वेदान्त बना है। अर्थ यह है कि जो जानने का अंत रूप है, जिसके जानने के बाद कुछ जानना शेष नहीं रहता, ऐसा जो परब्रह्म है, उसे जानने को वेदान्त कहते हैं। जिसमें माया सहित

मायिक ज्ञान का अंत हो जाय और आत्म तत्त्व ही शेष रहे, वह वेदान्त है।

आत्मा, ब्रह्म, परम पद, ईश्वर, विष्णु का परम धाम, अनाद्यंत तत्त्व, ॐ, वेदान्त आदिक समझाने के लिये, उपदेश देने में मदद रूप होने से ईश्वर के नाम हैं। ये नाम नाम के लिये नहीं है, किंतु जिसका बोध कराते हैं, उसके लिये हैं। जिसको ॐकार कहते हैं, वह ही वेदान्त है। ॐकार और वेदान्त भिन्न भिन्न नहीं हैं। जिस प्रकार ॐ का बोध ब्रह्म का बोध है इसी प्रकार वेदान्त का बोध भी ब्रह्म का बोध है। वेद से विशेष होने से वेदान्त वेद का शिरोभाग कहा जाता है। वेद का शिर ही ब्रह्म है इसलिये वेदान्त ब्रह्म है। ॐकार और वेदान्त की एकता—समानता इस प्रकार है:—जैसे ॐकार को तीन मात्रा वाला और अमात्र रूप समझाया है; ऐसे ही वेदान्त भी तीन मात्रा वाला और अमात्र रूप है। जिस प्रकार ॐकार की अकार, उकार, मकार तीन मात्रा और बिन्दु अमात्र स्वरूप है इसी प्रकार वेदान्त शब्द में भी व, दा और त तीन मात्रा और दा के ऊपर का बिन्दु अमात्र स्वरूप है। जैसे ॐकार के अमात्र का प्रकाश माया रूप अर्ध चन्द्राकार से अकार, उकार और मकार में पड़ता है इसी प्रकार 'वेदान्त' में बिन्दु दा के अकार में से पड़ कर, व, दा और त को प्रकाशित करता है। जैसे ॐकार की अकार

मात्रा उत्पत्ति रूप है इसी प्रकार वेदान्त की व मात्रा वृद्धि—उत्पत्ति रूप है। जगत् की उत्पत्ति वकार से जानी जाती है। जैसे ॐकार की उकार मात्रा स्थिति रूप है इसी प्रकार वेदान्त की दा मात्रा दिखाना स्थिति रूप है—आत्म भाव को ढांप कर मायिक स्थिति का दिखलाना है। जैसे ॐकार की मकार मात्रा लय रूप है इसी प्रकार वेदान्त की त मात्रा तजना-छोड़ना-प्रलय रूप है। जैसे ॐकार में अमात्र शुद्ध साक्षी रूप परब्रह्म है, ऐसे ही वेदान्त में बिन्दु वेदान्त रहस्य रूप परब्रह्म स्वरूप है। इस प्रकार जो ॐकार है वह ही वेदान्त है। ॐकार और वेदान्त दोनों का रहस्य परब्रह्म ही है।

वेदान्त रहस्य इस प्रकार है:—उत्पत्ति, स्थिति और लय रूप प्रतीति, और जिस अज्ञान से प्रतीति होती है, वह अज्ञान और जिस आधार में वह अज्ञान है वह आधार यह तीनों वस्तुयें एक ही हैं। अधिष्ठान शुद्ध है, उसे बाजीगर समझो। उत्पत्ति, स्थिति और लय रूप उस बाजीगर के तमाशा करने का थैला समझो। बाजीगर ब्रह्म अनाद्यंत तत्त्व है। उसकी बाजी-तमाशा माया का प्रपंच उत्पत्ति स्थिति और विनाश है। वस्तु रूप सब कुछ एक ही तत्त्व है, यह जो जानता है, वह विवेकी है। बाजीगर में ही जादू की सब विद्या भरी हुई हैं। जादूगर से जादू की विद्या बाहर नहीं है। जो जादूगर को यथार्थ जानता है, वह जादू की सब विद्याओं को भी जानता है, वह ही विवेकी होता है,

वह ही ब्रह्म का ज्ञाता ब्रह्म रूप है। जैसे बाजीगर बाजी को जानता हुआ तमाशा करता है परन्तु उसमें मोह को प्राप्त नहीं होता इसी प्रकार जो आत्म स्वरूप का ज्ञाता है वह भी आत्मा के तमाशे रूप माया के प्रपंच में मोह को प्राप्त नहीं होता। वह बाजीगर को जानकर आपत्ति से रहित होता है, आत्मा से सब की उत्पत्ति और आत्मा में ही सब की समाप्ति जानता है इसलिये उसे मोह नहीं होता। प्रत्यगात्मा और परमात्मा की भिन्नता तमाशे में है, तमाशा करने वाले में नहीं है। वह अनाद्यंत तत्त्व तो ज्यों का त्यों ही रहता है, ऐसा जानने वाला एक में सबका समावेश करके परमानन्द को प्राप्त होता है। 'मैं अन्य हूं, तू अन्य है और वह अन्य है' इस प्रकार का भाव संसार है। इस भावमें रहते हुए किसी को भी अखंड शांति नहीं हो सकती। यह सब भिन्नता मायिक प्रतीति है, वास्तविक एक ही वस्तु है। इस प्रकार जो एकता में आता है, उसे शोक मोह नहीं होता। जिसके लिये सब आत्म रूप ही है, वह किससे मोह को प्राप्त होवें? ऐसे निश्चय विना, स्वरूप के बोध रूप वेदान्त तत्त्व विना करोड़ों जन्म धारण करने और करोड़ों महान् २ प्रयत्न करने से भी अखंडित शांति रूप परम पद प्राप्त नहीं होगा। जो सब से आद्य और सब से श्रेष्ठ है, जो सब का बड़ा और सबका एक है उसे ही ज्ञानी जानते हैं। वह ही परब्रह्म है, वह ही वेदान्त रहस्य रूप परम तत्त्व है।

❀ समाप्त ❀

वेदान्त केसरी कार्यालय की पुस्तकें।

महा वाक्य—तत्त्वबोध को प्रत्यक्ष कराने के लिये महा वाक्य को छोड़कर अन्य कोई साधन नहीं है। ये शब्दरूप होते हुए भी शब्दातीत तत्त्व को अपने अभेद रूप से प्रत्यक्ष बोध कराने वाला है। जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति का अनुभव भी इसमें भली प्रकार समझाया गया है। मूल्य रु० १)

उपनिषत् [५१]—इसमें भिन्न भिन्न प्रकार की उपासना, ज्ञान के अपूर्व अनुभव तथा योग की रहस्यमय क्रियाओं का अनुभवयुक्त वर्णन है। मूल के साथ मिलाने के लिये सुभीता रहे इस हेतु से यथा स्थान श्लोकांक भी दिये गये हैं। सुन्दर छपाई ५५० पृष्ठ की कपड़े की जिल्द का मूल्य केवल रु० २॥)

ब्रह्म सूत्र—शांकर भाष्य भाषानुवाद भाग १ (पूर्वार्ध) इसके सम्पूर्ण उपलब्ध भाष्यों में शांकर भाष्य सबसे अधिक प्राचीन माना जाता है, परन्तु अब तक हिन्दी में इसका शब्दशः अनुवाद नहीं हुआ है। आशा है हिन्दी भाषा भाषी इससे पूरा लाभ उठावेंगे। मूल्य रु० ३)

मणि रत्न माला—इसके पद्य रोचक, विवेचन सहित, हृदय में जाकर असर पैदा करने वाले और सबके लिये ही हितकर है। प्रत्येक पद्य में प्रश्न और उत्तर साथ में हैं; इससे मुमुक्षुओं को जल्दी ज्ञान प्राप्त होगा। पृष्ठ ५०५ सुन्दर जिल्द का केवल मूल्य २)

पंचकोश विवेक—पंचकोश के परदे से ढपे हुए आत्मा का स्पष्ट बोध नहीं होता; इसीसे उनको विस्तार सहित समझा कर आत्मा को दर्शा दिया है। पंचकोश का विवेक ही आत्म अनात्म विवेक है। मूल्य १)

सदाचार—श्रीमत् शंकराचार्य कृत छोटे पुस्तकों में इसका भी एक नाम है; इससे मुमुक्षुओं को सत्य आचार का स्पष्ट बोध होता है। मूल्य ।।।)

काया पलट नाटक—राजा, रानी और मंत्री के रूप से जीव, बुद्धि और मन का जगत् आसक्ति में फंसना और सद्गुरु के उपदेश द्वारा अज्ञान टूट कर ज्ञान भाव में आने का वर्णन है। प्रारब्ध दुःख आदि का भी वर्णन है। मूल्य ।)

उपासना—इसमें साकार, सगुण, निर्गुण, कार्य ब्रह्म तथा कारण ब्रह्म आदि कई प्रकार की उपासना को भिन्न भिन्न प्रकार से समझाया है। मूल्य ।।)

चर्पट पंजरिका—"भज गोविंदं भज गोविंदं" पद्य का विवेचन सहित भाषानुवाद है। दृष्टांतों से रोचक है। सम श्लोकी पद्य भी हैं। मूल्य १)

कौशल्य गीतावली भाग १–२—वेदान्त केसरी में आई हुई कविताओं का संग्रह। कविता रोचक सरल और ज्ञान के संस्कारों को प्रदीप्त करने वाली तथा श्रवण, मनन और निदिध्यासन रूप है। प्रत्येक भाग का मूल्य ।=)

वाक्य सुधा—वेदान्त ग्रन्थों में ज्ञान समाधि का वर्णन बहुत स्थान पर है परन्तु इसमें जैसा वर्णन है वैसा सूक्ष्म वर्णन और स्थानमें कहीं नहीं मिलता। रहस्य पूर्ण विवेचनसे भली प्रकार समझाया गया है मुमुक्षुओं को अत्यन्त हितकर है। मूल्य १)

वेदान्त दीपिका—इस ग्रन्थ में जिज्ञासु को स्वाभाविकता से होने वाली शंकाओं का अत्यन्त मार्मिकता से समाधान किया गया है। वेदान्त के महत्व के ग्रन्थों को पढ़ने पर भी जिन शंकाओं का समाधान न होने से जिज्ञासु का चित्त अशान्त रहता है, वे शंकाएं इस ग्रन्थ को पढ़ने से समूल नष्ट हो जायंगी। ग्रंथ को पढ़ते समय जो नयी शंकाएं उत्पन्न होंगी उनका समाधान आगे ही मिलने से पाठकों को अत्यन्त आनन्द होगा। मूल्य १॥)

वेदान्त स्तोत्र संग्रह—श्रीमच्छङ्कराचार्य आदिके प्रतिभाशाली वेदान्त के मुख्य मुख्य चुने हुए २१ स्तोत्रों का संग्रह किया गया है और प्रत्येक स्तोत्र का अर्थ भी सरल भाषा में दिया गया है, जो थोड़े पढ़े हुए मुमुक्षुओं को भी नित्य पाठ और श्रवण में अति उपयोगी है। कई संन्यासियों ने भी इसे बहुत पसंद किया है। मूल्य ॥)

सब पुस्तकों का डाक खर्च ग्राहकों को देना होगा।

वेदान्त केसरी, बेलनगंज—आगरा।